अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-42, अंक-10, 1-15 जनवरी, 2019

क्या युवक चुनौती स्वीकार करेंगे?

आज के जमाने का ब्रह्म सर्वोदय

रिजर्व बैंक को समझना चाहिए कि भारत अमेरिका नहीं है

नववर्ष 2019 की हार्दिक शुभकामनाएँ

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 42, अंक : 10, 1-15 जनवरी, 2019

संपादक
अशोक मोती
फोन : 0542-2440223

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह **भवानी शंकर 'कुसुम'**

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

मूल्य	:	05 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC No. UBIN-0538353
Union Bank of India
Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. अहिंसक समाज का निर्माण... 2
2. क्या युवक चुनौती स्वीकार करेंगे?... 3
3. आज के जमाने का ब्रह्म सर्वोदय... 6
4. गांधी की व्यथा... 7
5. जेपी और कश्मीर... 11
6. रिजर्व बैंक को समझना चाहिए कि... 14
7. भीड़ की हिंसा और गांधी... 15
8. उपन्यास - 'बा'... 17
9. कविताएं... 19

संपादकीय

अहिंसक समाज का निर्माण आवश्यक

पिछले संपादकीय में 'अंत भला तो सब भला' लिखने से मेरी अपेक्षा नये वर्ष में एक नये माहौल में प्रवेश की थी। किन्तु वर्ष की समाप्ति के समय देश में कई अप्रत्याशित घटनाएं घटित हुई हैं, जिनका प्रभाव नये वर्ष में और भी स्पष्ट होकर भयावह बनने की आशंका है, जो अहिंसक समाज बनने की प्रक्रिया में बड़ी समस्याएं पैदा कर सकती हैं।

पहली घटना के तौर पर कतिपय दल और संगठनों द्वारा अयोध्या में मंदिर निर्माण के लिए देश के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अविलंब निर्णय देने तथा सरकार द्वारा इस संबंधी एक विधेयक के माध्यम से राम मंदिर निर्माण के मार्ग प्रशस्त करने के लिए दबाव बनाना।

दूसरी घटना के तौर पर व्यक्ति की निजता पर हमला करने वाला केन्द्र सरकार के गृह मंत्रालय का आदेश, जिसमें कतिपय खुफिया एजेंसियों को किसी के भी कम्प्यूटर को खंगालने यानी सभी डेटा की निगरानी करने और देखने का अधिकार।

तीसरी घटना, देश के वरिष्ठ अभिनेता पद्मविभूषण नसीरुद्दीन शाह का वह बयान है, जिसमें उन्होंने इस विवाद को छेड़ा है कि देश का माहौल डरावना होता जा रहा है। शाह ने कहा कि उन्हें अपने बच्चे का डर सता रहा है। इस डर के जवाब में भाजपाइयों ने उसी तरह का हमला शुरू किया है जैसा हमला डेढ़-दो साल पूर्व फिल्म अभिनेता अमीर खान पर हुआ था। अमीर खान को भी अपने बच्चे के लिए डर, उनकी पत्नी किरण राव के माध्यम से उजागर हुआ था। जिस तरह अमीर खान पर हमले हुए और उन्हें पाकिस्तान जाने की नसीहत भाजपाइयों और संघ के लोगों ने दी थी, वैसी ही नसीहत फिल्मी कलाकार शाह को भी दी गयी है। इन्हें तो देशद्रोही सिद्ध करने की भी कोशिश हो रही है। निःसंदेह अमीर और शाह दोनों देश के ऐसे बड़े कलाकार हैं, जिन्होंने अंतरधार्मिक न केवल शादी की है बल्कि उन्होंने अपनी कलाकारी से देश का नाम दुनिया में ऊंचा उठाया है। उनके उच्च विचारों से भी देश और दुनिया पूरी तरह वाकिफ है। इसके बावजूद आज देश में असहिष्णुता का माहौल बहुसंख्यकों को उभारने के मकसद से इधर कुछ वर्षों से बनाया गया है, जिसपर सारी दुनिया की नजर है। यहां यह उल्लेखनीय है कि बुलंदशहर में गाय की सुरक्षा के नाम पर पुलिस कप्तान की हत्या के बाद से लोगों में डर स्वाभाविक रूप से बना है। इसमें एक समुदाय का संगठन शामिल था। न केवल बुद्धिजीवियों को नक्सल की उपाधि दी जा रही है बल्कि कुछ की हत्याएं भी हुई हैं।

यह तो स्पष्ट है कि किसी भी देश में लोकतंत्र की गाड़ी अहिंसा के बिना चल नहीं सकती। भारत देश में विभिन्न धर्मावलंबियों को मिल-जुलकर साथ रहने की संस्कृति रही है और इसी कारण इस देश का लोकतंत्र फलता-फूलता रहा है। किन्तु कुछ लोग जो देश को संविधान से नहीं अपनी व्यक्तिगत आस्थाओं से चलाने की कोशिश करते हैं, उन्होंने ही पिछले कुछ वर्षों से देश में डर और हिंसा का माहौल बनाया है। अपनी हर गतिविधियों का आधार धर्म को बनाना चाहते हैं। इनका एक मकसद गांधी विचारों को दफना देने का भी है।

पूरा देश जानता है कि अयोध्या में राम मंदिर के निर्माण का मामला देश के सर्वोच्च न्यायालय में निर्णय के लिए लंबित है और बिना न्यायालय के निर्णय के यह निर्माण संभव नहीं है, फिर भी कुछ लोग न्यायालय पर दबाव बनाने के असंवैधानिक कार्य में जुटे हुए हैं। गाय की सुरक्षा का सवाल हो या विभिन्न संप्रदायों में समन्वय व सहकार का, जो काम गांधी-विनोबा और जेपी ने किया है, किसी ने नहीं किया। लेकिन आज ऐसे लोगों का दृष्टिकोण बिल्कुल भिन्न है। राज-काज के बारे में सदैव हम सुनते रहे हैं कि कोई शासन आमलोंगो के दिलों पर राज करता है, लेकिन लगता है कि अभी जनता के दिल पर नहीं बल्कि दिमाग पर राज करने के लिए ये लोग प्रयासरत हैं।

निजता को भंग करने वाली कार्रवाई के तहत सबसे बड़ी कार्रवाई भाजपाई सरकार के गृह मंत्रालय द्वारा निर्गत आदेश है, जिसके तहत 10 केन्द्रीय जांच एवं खुफिया एजेंसियों को सूचना प्राद्योगिकी कानून 2000 की धारा 69 के तहत किसी कम्प्यूटर में रखी गयी जानकारी देखने, उसपर नजर रखने और उसका विश्लेषण करने का अधिकार दे दिया गया है, जो असंवैधानिक, अलोकतांत्रिक और लोगों के मूलभूत बुनियादी अधिकारों पर हमला है। इसके पहले 'आधार' के द्वारा भी निजता पर हमला

हुआ था, जिसे सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश के बावजूद बनाये रखा गया और लाखों लोंगो की व्यक्तिगत सूचना लीक हुई। आज उस 'आधार' को सिम-कार्ड या बैंक खातों से जोड़ना अनिवार्य नहीं रह गया है, बल्कि एक सूचना के अनुसार यदि बैंक या दूरसंचार कंपनियां पहचान या पते के प्रमाण हेतु 'आधार कार्ड' के लिए ग्राहकों पर दबाव बनाती हैं तो उसे एक करोड़ रुपये तक का जुर्माना तथा कर्मचारियों को 10 साल तक की सजा भी हो सकती है। आधार और अब कम्प्यूटर पर निगरानी रखने का आदेश केन्द्र सरकार की एक जिद्द भर है, जिसे वह राष्ट्र की सुरक्षा और आतंकवाद के नाम पर पूरा करना चाहती है। सवाल है कि जो कानून पूर्व से ही लागू है, फिर उसे अलग से लागू क्यों किया जा रहा है, जिससे डर पैदा हुआ है।

निःसंदेह आज जो जनता का वोट पाकर सत्ता में जाते हैं वे लोगों का या समाज का हित-चिन्तन नहीं करते। उनका एक ही लक्ष्य होता है सत्ता पर किसी तरह कब्जा जमाये रखना। यह सत्ता जनता के पैसे से चलती है लेकिन सही रूप में जनहित के लिए काम नहीं करती। इन्हें समाज को जोड़ने का काम नहीं करना है। कैसे लोगों की भूखमरी, बेरोजगारी दूर हो, इसके लिए सोचने की इन्हें फुर्सत नहीं होती। कैसे समाज का हर संप्रदाय-जाति को जोड़ा जाय और सामूहिक व संगठित शक्ति का उपयोग देश के उत्थान में हो, इस दिशा में इनकी कोई सोच नहीं होती। स्वाभाविक है जब आदमी भूखा होगा तो हिंसा जन्म लेगी। इसलिए किसी संस्कृति के विकास के लिए भूखे की भूख कैसे मिटे, इसपर ध्यान देना बहुत जरूरी है। यह हालात तभी बदलेगा, जब मतदाता जागरूक हो, संगठित हो और वे अपने प्रतिनिधियों के कामकाज का हिसाब मांगे। इसलिए यह आवश्यक है कि गांव-गांव में लोकसेवक लोगों के बीच रहें, उन्हें संगठित करें ताकि लोकतंत्र की बुनियाद मजबूत हो सके।

अस्तु, सबसे अधिक जरूरत है जन-समस्याओं के बारे में सोचने का तथा जनप्रतिनिधियों से सवाल पूछने का साहस व आत्मविश्वास पैदा करने की, जो अहिंसा की संस्कृति के विकास के लिए प्रथम आवश्यकता है।

–अशोक मोती

क्या युवक चुनौती स्वीकार करेंगे?

❑ **गांधी**

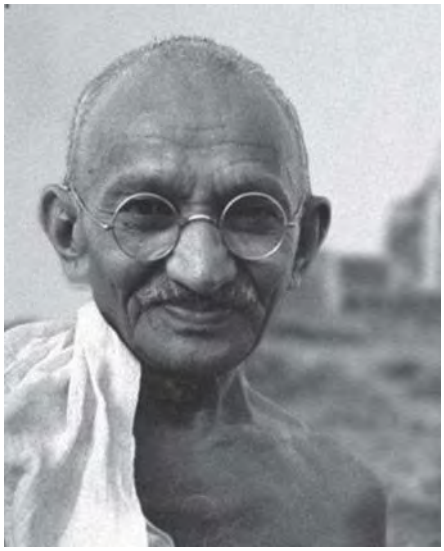

हम एक ऊंची ग्राम-सभ्यता के उत्तराधिकारी है। हमारे देश की विशालता, आबादी की विशालता और हमारी भूमि की स्थिति तथा आबहवा ने, मेरी राय में, मानो यह तय कर दिया है कि उसकी सभ्यता ग्राम-सभ्यता ही होगी। उसके दोष मशहूर है, लेकिन उनमें कोई ऐसा नहीं है जिसका इलाज न हो सकता हो। इस सभ्यता को मिटाकर उसकी जगह शहरी सभ्यता को जमाना मुझे तो अशक्य मालूम होता है। हां, हम लोग किन्हीं कठोर उपायों द्वारा अपनी आबादी 30 करोड़ से घटाकर 3 करोड़ या 30 लाख करने को तैयार हो जायं तो दूसरी बात है। इसलिए यह मानकर कि हम लोगों को मौजूदा ग्राम-सभ्यता ही कायम रखना है और उसके माने हुए दोषों को दूर करने का प्रयत्न करना है, मैंने उन दोषों के इलाज सुझाये हैं। लेकिन इन इलाजों का उपयोग तभी हो सकता है, जब कि देश का युवक-वर्ग ग्राम-जीवन को अपना ले। और अगर वे ऐसा करना चाहते हैं, तो उन्हें अपने जीवन का तौर-तरीका बदलना चाहिए और अपनी छुट्टियों का हरएक दिन अपने कॉलेज या हाईस्कूल के आसपास वाले गांव में बिताना चाहिए, और जो अपनी शिक्षा पूरी कर चुके हों या जो शिक्षा ले ही न रहे हों, उन्हें गांवों में बसने का इरादा कर लेना चाहिए।

गांवों में जाकर काम करने से हम चौंकते हैं। हम शहरी लोगों को देहाती जीवन अपनाना बहुत मुश्किल मालूम होता है। बहुतों के शरीर ही गांव की कठिन चर्या को सहने से इनकार कर देते हैं। परंतु यदि हम स्वराज्य की स्थापना जनता की भलाई के लिए करना चाहते हैं, सिर्फ शासकों के मौजूदा दल की जगह उनके जैसा ही कोई दूसरा दल—जो शायद उनसे भी बुरा सिद्ध हो—नहीं बैठाना चाहते, तो इस कठिनाई का मुकाबला हमें साहस के साथ ही नहीं बल्कि वीरता के साथ, अपने प्राणों की बाजी लगाकर करना होगा। आज तक देहाती लोग, हजारों और लाखों की संख्या में, हमारे जीवन का पोषण करने के लिए मरते आये हैं, अब उनके जीवन का पोषण करने के लिए हमें मरना होगा। बेशक, उनके मरने में और हमारे मरने में बुनियादी फर्क होगा। वे बिन-जाने और अनिच्छापूर्वक मरे हैं। उनके इस विवश बलिदान ने हमें गिराया है। अब यदि हम ज्ञानपूर्वक और इच्छापूर्वक मरेंगे, तो हमारा बलिदान हमें और हमारे साथ समूचे राष्ट्र को ऊपर उठायेगा। यदि हम एक आजाद और स्वावलंबी देश की तरह जीना चाहते हैं, तो इस आवश्यक बलिदान से हमें अपना कदम पीछे नहीं हटाना चाहिए।

मैं चाहता हूं कि तुम (नवयुवक) गांवों से जाओ और वहां जमकर बैठ जाओ—उनके मालिकों या उपकारकर्ताओं की तरह नहीं, उनके विनम्र सेवकों की तरह। तुम्हारी दैनिक चर्या से और तुम्हारे रहन-सहन से उन्हें समझने दो कि उन्हें खुद क्या करना है और अपना रहने का ढंग किस तरह बदलना है। महज भावना का कोई उपयोग नहीं है, ठीक उसी तरह जैसे कि भाप का अपने-आप में कोई उपयोग नहीं है। भाप को उचित नियंत्रण में रखा जाय तभी उसमें ताकत पैदा होती है। यही बात भावना की है। मैं चाहता हूं कि तुम भारत की आहत आत्मा के लिए शांतिदायी लेप लेकर जाने वाले भगवान् के दूतों की तरह उनके बीच में जा पहुंचो।

शहरों के नवयुवक प्रायश्चित करें : गांवों की बुरी हालत का कारण यह है कि जिन्हें शिक्षा का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, उन्होंने गांवों की बहुत उपेक्षा की है। उन्होंने अपने

लिए शहरी जीवन चुना है। ग्राम आंदोलन इसी बात का एक प्रयत्न है कि जो लोग सेवा की भावना रखते हैं, उन्हें गांवों में बसकर ग्रामवासियों की सेवा में लग जाने के लिए प्रेरित करके गांवों के साथ स्वास्थ्यप्रद संपर्क स्थापित किया जाय। जो लोग सेवाभाव से ग्रामों में बसे हैं, वे अपने सामने कठिनाइयां देखकर हतोत्साह नहीं होते। वे तो इस बात को जानकर ही वहां जाते हैं कि अनेक कठिनाइयों में, यहां तक कि गांव वालों की उदासीनता के होते हुए भी, उन्हें वहां काम करना है, जिन्हें अपने मिशन में और खुद अपने-आपमें विश्वास है, वे ही गांव वालों की सेवा करके उनके जीवन पर कुछ असर डाल सकेंगे। सच्चा जीवन बिताना खुद ऐसा सबक है, जिसका आसपास के लोगों पर जरूर असर पड़ता है। लेकिन...जो सिर्फ अपने जीवन-निर्वाह के लिए रोजी कमाने को ही वहां जाते हैं, उनके लिए ग्राम-जीवन में कोई आकर्षण नहीं है, यह मैं स्वीकार करता हूं। सेवाभाव के बगैर जो लोग गांवों में जाते हैं, उनके लिए तो उसकी नवीनता नष्ट होते ही ग्राम-जीवन नीरस हो जायेगा।

गांवों में जाने वाले किसी नवयुवक को कठिनाइयों से घबराकर कभी अपना रास्ता नहीं छोड़ना चाहिए।...नवयुवकों को मेरी सलाह है कि...वे अपना प्रयत्न छोड़ न दें, बल्कि उसमें लगे रहें और अपनी उपस्थिति से गांवों को अधिक प्रिय और रहने योग्य बना दें। लेकिन यह वे करेंगे ऐसी सेवा के ही द्वारा, जो गांव वालों के अनुकूल हो। अपने ही परिश्रम से गांवों को अधिक साफ-सुथरा बनाकर और अपनी योग्यतानुसार गांवों की निरक्षरता दूर करके हरएक व्यक्ति इसकी शुरुआत कर सकता है। और अगर उनके जीवन साफ, सुघड़ और परिश्रमी बनेंगे

गांव में जितने लोग रहते हैं उन्हें पहचानना, उन्हें जो सेवा चाहिए वह देना, अर्थात् उनके लिए साधन जुटा देना और उनको वह काम करना सिखा देना, दूसरे कार्यकर्ता पैदा करना आदि काम ग्रामसेवक करेगा। ग्रामसेवक ग्रामवासियों पर इतना प्रभाव डालेगा कि वे खुद आकर उससे सेवा मांगेंगे, और उसके लिए जो साधन या दूसरे कार्यकर्ता चाहिए, उन्हें जुटाने के लिए उसकी पूरी मदद करेंगे। मानो कि मैं देहात में घानी लगाकर बैठा हूं, तो में घानी से संबंध रखने वाले सब काम तो कर ही लूंगा। मगर मैं सामान्य 15-20 रुपये कमाने वाले घांची (तेली) नहीं बनूंगा। मैं तो महात्मा घांची बनूंगा। 'महात्मा' शब्द मैंने विनोद में इस्तेमाल किया है इसका अर्थ केवल यह है कि अपने घांचीपने में मैं इतनी सिद्धि डाल दूंगा कि गांव वाले आश्चर्यचकित हो जायेंगे। मैं गीता पढ़ने वाला, कुरानशरीफ पढ़ने वाला, उनके लड़कों को शिक्षा दे सकने की शक्ति रखने वाला घांची होऊंगा। समय के अभाव से मैं लड़कों को सिखा न सकूं, यह दूसरी बात है। लोग आकर कहेंगे : ''तेली महाशय, हमारे लड़कों के लिए एक शिक्षक तो ला दीजिएगा।'' मैं कहूंगा, ''शिक्षक मैं ला दूंगा, मगर उसका खर्च आपको बरदाश्त करना होगा।'' वे खुशी से उसको स्वीकार करेंगे। मैं उन्हें कातना सिखा दूंगा। जब वे बुनकर की मदद की मांग करेंगे, तो शिक्षक की तरह उन्हें बुनकर ला दूंगा, ताकि जो चाहे सो बुनना भी सीख ले। उन्हें मैं ग्राम-सफाई का महत्त्व बताऊंगा। जब वे सफाई के लिए भंगी मांगेंगे तो मैं कहूंगा, मैं खुद भंगी हूं, आइए आपको यह काम भी सिखा दूं। यह है मेरी समग्र ग्रामसेवा की कल्पना। आप कह सकते हैं कि इस युग में तो ऐसा घांची पैदा नहीं होने वाला है, तो आपसे कहूंगा, तब इस युग में ग्राम भी ऐसे-के-ऐसे रहने वाले हैं।

ग्रामसेवक की आवश्यक योग्यताएं : ग्राम-उद्धार में अगर सफाई न आये, तो हमारे गांव कचरे के घूरे जैसे ही रहेंगे। ग्राम-सफाई का सवाल प्रजा के जीवन का अविभाज्य अंग है। यह प्रश्न जितना आवश्यक है, उतना ही कठिन भी है। दीर्घ काल से जिस अस्वच्छता की आदत हमें पड़ गयी है, उसे दूर करने के लिए महान् पराक्रम की आवश्यकता है। जो सेवक ग्राम-सफाई का शास्त्र नहीं जानता, खुद भंगी का काम नहीं करता, वह ग्राम-सेवा के लायक नहीं बन सकता।

नयी तालीम के बिना हिन्दुस्तान के करोड़ों बालकों को शिक्षण देना लगभग असंभव है, यह चीज सर्वमान्य हो गयी कही जा सकती है। इसलिए ग्रामसेवक को उसका ज्ञान होना ही चाहिए। उसे नयी तालीम का शिक्षण होना चाहिए। इस तालीम के पीछे प्रौढ़-शिक्षा तो अपने-आप चला आयेगा। जहां नयी तालीम ने घर कर लिया होगा, वहां बच्चे ही माता-पिता के शिक्षक बन जाने वाले हैं। कुछ भी हो, ग्रामसेवक के मन में प्रौढ़-शिक्षा देने की लगन होनी चाहिए।

स्त्री को अर्धांगिनी माना गया है। जब तक कानून से स्त्री और पुरुष के हक समान नहीं माने जाते, तब तक लड़की के जन्म का लड़के के जन्म जितना ही स्वागत नहीं किा जाता है, तब तक समझना चाहिए कि हिन्दुस्तान लकवे के रोग से ग्रस्त है। स्त्री की अवगणना अहिंसा की विरोधी है। इसलिए ग्रामसेवक को चाहिए कि वह हर स्त्री को मां, बहन या बेटी के समान समझे और उसके प्रति आदर-भाव रखे। ऐसा ग्रामसेवक ही ग्रामवासियों का विश्वास प्राप्त कर सकेगा।

रोगी प्रजा के लिए स्वराज्य प्राप्त करना मैं असंभव मानता हूं। इसलिए हम लोग आरोग्य-शास्त्र की जो अवगणना करते हैं, वह दूर होनी चाहिए। अतः ग्रामसेवक को आरोग्य-शास्त्र का ज्ञान होना चाहिए।

राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र नहीं बन सकता। 'हिन्दी-हिन्दुस्तानी-उर्दू' के झगड़े में न पड़कर ग्रामसेवक, अगर वह राष्ट्रभाषा नहीं जानता, उसका ज्ञान हासिल करे। उसकी बोली ऐसी होनी चाहिए, जिसे हिन्दू-मुसलमान सब समझ सकें।

हमने अंग्रेजी के मोह में फंसकर मातृभाषा का द्रोह किया है। इस श्वेह के प्रायश्चित के तौर पर भी ग्रामसेवक मातृभाषा के प्रति लोगों के मन में प्रेम उत्पन्न करेगा। उसके मन में हिन्दुस्तान की सब भाषाओं के लिए आदर होगा। उसकी अपनी मातृभाषा जो भी हो, जिस प्रदेश में वह बसेगा, वहां की मातृभाषा वह स्वयं सीखकर अपनी मातृभाषा के प्रति वहां के लोगों की भावना बढ़ायेगा।

अगर इस सबके साथ-साथ आर्थिक समानता का प्रचार न किया गया, तो यह सब निकम्मा समझना चाहिए। आर्थिक समानता का यह अर्थ हरगिज नहीं कि हरएक के पास धन की समान राशि होगी। मगर यह अर्थ जरूर है कि हरएक के पास ऐसा घरबार, वस्त्र और खाने-पीने का समान होगा कि जिससे वह सुख से रह सके। और जो घातक असमानता आज मौजूद है, वह केवल अहिंसक उपायों से ही नष्ट होगी।

यह हिन्दुस्तान की बदकिस्मती है कि जैसी दलबंदी और मतभेद शहरों में है, वैसी ही देहातों में भी देखे जाते हैं। और जब गांवों

की भलाई का खयाल न रखते हुए अपनी पार्टी की ताकत बढ़ाने के लिए गांवों का उपयोग करने के खयाल से राजनीति सत्ता की बू हमारे देहातों में पहुंचती है, तो उससे देहातियों को मदद मिलने के बजाय उनकी तरक्की में रुकावट ही होती है। मैं तो कहूंगा कि चाहे जो नतीजा हो, हमें ज्यादा-से-ज्यादा मात्रा में स्थानीय मदद लेनी चाहिए। और अगर हम राजनीतिक सत्ता हड़पने की बुराई से दूर रहें, तो हमारे हाथों कोई बुराई होने की संभावना नहीं रहती। हमें याद रखना चाहिए कि शहरों के अंग्रेजी पढ़े-लिखे स्त्री-पुरुषों ने हिन्दुस्तान के आधार पर बने हुए गांवों को भुला देने का गुनाह किया है। इसलिए आज तक की हमारी इस लापरवाही को याद करने से हममें धीरज पैदा होगा। अभी तक मैं जिस-जिस गांव में गया हूं, वहां मुझे एक-न-एक सच्चा कार्यकर्ता मिला ही है। लेकिन गांवों में भी लेने लायक कोई अच्छी चीज होती है, ऐसा मानने की नम्रता हममें नहीं है। और यही कारण है कि हमें वहां कोई नहीं मिलता। बेशक, हमें स्थानीय राजनीतिक मामलों से परे रहना चाहिए। लेकिन यह हम तभी कर सकते हैं, तब हम सारी पार्टियों की और किसी भी पार्टी में शामिल न होने वाले लोगों की सच्ची मदद लेना सीख जायेंगे।

सुसंस्कृत घर जैसी कोई पाठशाला नहीं और ईमानदार तथा सदाचारी माता-पिता जैसी कोई शिक्षण नहीं। स्कूलों में मिलने वाली प्रचलित शिक्षा गांव वालों पर एक व्यर्थ का बोझ है, जिसका उनके लिए कोई उपयोग नहीं है। उनके बच्चे उसे पाने की आशा नहीं कर सकते। और भगवान् को धन्यवाद है कि यदि उन्हें सुसंस्कृत घर की तालीम मिल सके, तो उन्हें कभी भी उसकी कमी खटकेगी नहीं। अगर ग्रामसेवक संस्कारवान् नहीं है, अगर वह अपने घर में सुसंस्कृत वातावरण पैदा करने की क्षमता नहीं रखता, तो उसे ग्रामसेवक बनने की, ग्रामसेवक होने का सम्मान और अधिकार पाने की, आकांक्षा छोड़ देनी चाहिए।

अगर शारीरिक श्रम के साथ अकारण ही जो शर्म की भावना जुड़ गयी है, वह दूर की जा सके, तो सामान्य बुद्धि वाले हरएक युवक और युवती के लिए उन्हें जितना चाहिए, उससे कहीं अधिक काम पड़ा हुआ है।...

...जो आदमी अपनी जीविका ईमानदारी से कमाना चाहता है वह किसी भी श्रम को छोटा यानी अपनी प्रतिष्ठा को घटाने वाला नहीं मानेगा। महत्त्व की बात यह है कि भगवान् ने हमें जो हाथ-पांव दिये हैं, हम उनका उपयोग करने के लिए तैयार रहें।

अपना सारा ज्ञान और पांडित्य तराजू के एक पलड़े पर और सत्य तथा पवित्रता को दूसरे पलड़े पर रखकर देखो। सत्य और पवित्रता वाला पलड़ा पहले पलड़े से कहीं भारी पड़ेगा। नैतिक अपवित्रता की विषैली हवा आज हमारे विद्यार्थियों में भी जा पहुंची है और किसी छिपी हुई महामारी की तरह उसकी भयंकर बरबादी कर रही है। इसलिए मैं तुम लोगों से अनुरोध करता हूं कि तुम अपने मन और शरीर पवित्र रखो। तुम्हारा सारा पांडित्य और शास्त्रों का तुम्हारा सारा अध्ययन बिल्कुल बेकार होगा, यदि तुम उनकी शिक्षाओं को अपने दैनिक जीवन में उतार सको। मैं जानता हूं कि शिक्षक भी ऐसे हैं जो पवित्र और स्वच्छ जीवन नहीं बिताते। उनसे मैं कहूंगा कि वे अपने छात्रों को दुनिया का सारा ज्ञान सिखा दें, परंतु यदि वे उनमें सत्य और पवित्रता की लगन पैदा न करें, तो यही कहना होगा कि उन्होंने अपने छात्रों का श्वेह किया है और उन्हें ऊपर उठाने के बजाय आत्मनाश के मार्ग की ओर प्रवृत्त किया है। चरित्र के अभाव में ज्ञान बुराई को ही बढ़ाने वाली शक्ति है, जैसा कि हम ऊपर से भले दिखायी देने वाले किन्तु भीतर से चोरी और बेईमानी का धंधा करने वाले अनेक लोगों के मामले में देखते हैं।

युवकों को, जो भविष्य के विधाता होने का दावा करते हैं, राष्ट्र का नमक—रक्षक तत्त्व—होना चाहिए। यदि यह नमक ही अपना खारापन छोड़ दे तो उसे खारा कैसे बनाया जाय?

मेरी आशा देश के युवकों पर है। उनमें से जो बुरी आदतों के शिकार हैं, वे स्वभाव से बुरे नहीं हैं। वे उनमें लाचारी से और बिना सोचे-समझे फंस जाते हैं। उन्हें समझना चाहिए कि इससे उनका और देश के युवकों का कितना नुकसान हुआ है। उन्हें समझना चाहिए कि इससे उनका और देश के युवकों का कितना नुकसान हुआ है। उन्हें यह भी समझना चाहिए कि कठोर अनुशासन द्वारा नियमित जीवन ही उन्हें और राष्ट्र को संपूर्ण विनाश से बचा सकता है, कोई दूसरी चीज नहीं।

...सबसे बड़ी बात तो यह है कि उन्हें ईश्वर की खोज करनी चाहिए और प्रलोभनों से बचने के लिए उसकी मदद मांगनी चाहिए। उसके बिना यंत्र की तरह केवल अनुशासन का पालन करने से विशेष लाभ नहीं होगा। ईश्वर की खोज का, उसके ध्यान और दर्शन का अर्थ यह भी है कि जिस तरह बालक बिना किसी प्रदर्शन की आवश्यकता के अपनी मां के प्रेम को महसूस करता है, उसी तरह हम भी यह महसूस करें कि ईश्वर हमारे हृदयों में विराजमान है। ❑

'शताब्दी संदेश' के पूर्व संपादक श्री प्रेमचंद जैन का निधन

सर्वोदय विचार की मशहूर पाक्षिक 'शताब्दी संदेश' और मासिक 'तीर्थंकर' के संपादक श्री प्रेमचंद जैन का 3 दिसंबर 2018 को इंदौर में निधन हो गया। वे 80 वर्ष के थे।

प्रेमचंद भाईजी ने अपने विद्यार्थी जीवन में एक सहपाठी श्री शांतिलाल छाजेड़ के सहयोग से इंदौर में बालोदय समाज की स्थापना और संचालन कर अनेक बालकों और तरुणों को गांधी-विचार की प्रेरणा दी।

हिन्दी साहित्य में एम.ए. की पढ़ाई पूरी कर श्री काशीनाथजी त्रिवेदी की सलाह से नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद के प्रकाशन विभाग में कई वर्ष कार्य किया। महात्मा गांधी के जन्म शताब्दी वर्ष में श्री काशीनाथजी त्रिवेदी के संपादन और नेतृत्व में मध्य प्रदेश गांधी स्मारक निधि की ओर से प्रकाशित हुए पाक्षिक 'शताब्दी संदेश' का 35 वर्ष संपादन किया।

देश में सन् 1975-76 में लगे आपातकाल में शताब्दी संदेश के प्रकाशक बालकृष्ण जोशी और संपादक श्री महेन्द्र कुमार के साथ श्री प्रेमचंद भाईजी भी 3 महीने 25 दिन मीसाबंदी रहे। इन तीनों पर डीआईआर का मुकदमा भी चलाया गया।

प्रेमचंद भाईजी के निधन पर शहर की गांधीवादी रचनात्मक संस्थाओं एवं विशिष्ट जनों ने आपके व्यक्तित्व व कर्तृत्व पर प्रकाश डाला और अपनी गहरी संवेदना व्यक्त करते हुए विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित की। **–सप्रेस**

आज के जमाने का ब्रह्म सर्वोदय

❑ विनोबा

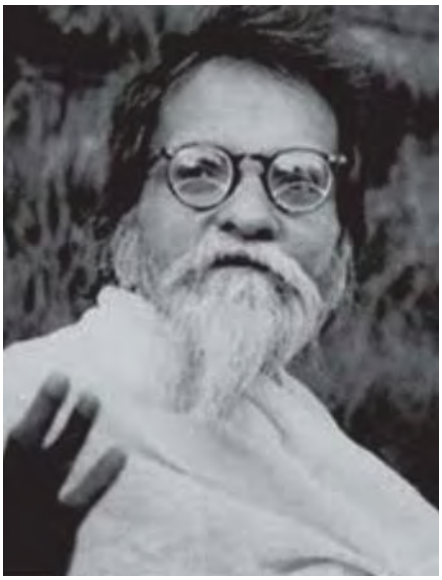

सर्वोदय-विचार इतना व्यापक है कि हम उसके अमल करने की कोशिश मात्र कर सकते हैं। पूरा अमल तो हो नहीं सकता। सर्वोदय के पूरे अमल के लिए तो परमेश्वर के दर्शन की जरूरत है।

बापू स्वयं कहते थे कि मेरा संपूर्ण जीवन, साधना, सत्याग्रह वगैरह कार्य परमेश्वर की खोज के लिए है। आमतौर से ईश्वर की खोज करने वाले एकांत में जाते हैं। बापू एकांत में नहीं गये, लोगों के बीच रहकर ही उन्होंने काम किया। हां, ध्यान, प्रार्थना आदि के लिए 15-20 मिनट निकालते थे। लेकिन वे कहते कि, ''ध्यान हमारे काम में हर क्षण होना चाहिए और एकांत तो जनता के बीच काम करते-करते हर क्षण मिलना चाहिए।''

एकांत में जाते हैं तो हमारा मन भटकता है। यह कैसा एकांत है? सही एकांत तो वह है, जहां हम मन से अलग हो जाते हैं। अतः मन से अलग होकर बापू जनसेवा में हमेशा एकांत का अनुभव करते थे और कहते थे कि 'ईश्वर की खोज और दर्शन के लिए मेरा जीवन है।'

स्थूल झमेले में असली स्वरूप भूल न जाना : गांधी को समझने के लिए यह बात ध्यान में रखना बहुत जरूरी है। नहीं तो स्थूल प्रवृत्ति के झमेले के बीच गांधीजी का असली स्वरूप ध्यान में नहीं आयेगा। गांधीजी हमेशा इस बात पर जोर देते थे कि चाहे जो काम करो, उसमें हृदय की शुद्धि होनी चाहिए। काम करते-करते मुख्य रूप से हृदयशुद्धि और चित्तशुद्धि करते रहना चाहिए। अगर हृदय शुद्ध नहीं होगा, तो गाय कैसे बचेगी, किसान के हृदय में कैसे प्रवेश होगा, खादी कौन पहनेगा? इसलिए एक-एक काम के साथ हृदय-शुद्धि की बात जुड़ जानी चाहिए, ऐसा गांधीजी बार-बार जोर देकर कहते थे। हमारे देश में रामकृष्ण-मिशन ने पहली बार अद्वैत से प्रेरित होकर पूर्ण प्रेममयी सेवा का आरंभ किया। इसी प्रकार गांधीजी ने पहली बार भक्तिमार्ग के स्वरूप में समाज की सेवा शुरू की। रामकृष्ण के शिष्यों ने सेवा में अद्वैतमार्गी प्रेम का प्रकर्ष प्रकट किया तो गांधीजी ने परमेश्वर की भक्ति का सरल सार मानव-सेवा में ही सिखा दिया।

इस तरह बापू के मत में कर्म एक उपासना थी। स्थूल क्रिया का उनके सामने अधिक महत्त्व नहीं था, उसके पीछे की भावना का था। बाहर से वे हमेशा स्थूल कामों में डूबे दीखते थे। लेकिन उस सारी खटपट से वे जल-कमलवत् अलिप्त थे। एक बार गांधीजी ने किसी काम के बारे में मुझसे पूछा, तो मैंने जवाब दिया कि ''मुझे नहीं लगता कि इसका बहुत अधिक परिणाम आयेगा।'' तब वे हंसते हुए बोले—''देखो विनोबा, यह योग्य है या अयोग्य, इतना ही हमें देखना है। बाकी मैं तो मानता हूं कि अपने कुल काम का परिणाम शून्य है।'' यह कहकर उन्होंने हवा में अपने हाथ से शून्य बनाकर बताया। इस दुनिया में ईश्वर के सिवा दूसरी कोई हस्ती नहीं है। हम तो अपने संतोष के लिए काम करते हैं। बाकी परिणाम का दृष्टि से देखा जाये तो हमारी सारी क्रियाओं का परिणाम शून्य है। इस शून्य में ही बापू की आध्यात्मिक बैठक थी।

इसीलिए बापू ने हमारे सामने कितनी ही ऐसी बातें पेश कीं, जो केवल आध्यात्मिक क्षेत्र में आती हैं, दूसरे क्षेत्र में नहीं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि पांच यमों के साथ उन्होंने दूसरी कई बातें जोड़कर एकादश व्रत हमारे सामने रखे। यह कोई नयी कल्पना नहीं, पुरानी ही है। सत्य, अहिंसा आदि कोरे शब्द ही नहीं, सब धर्मों का निचोड़ है। मानव-जीवन की प्रतिष्ठा के लिए जितना कुछ आध्यात्मिक चिन्तन किया गया है, उस सारे चिन्तन का सार, मूलभूत पांच व्रतों में हमारे पूर्वजों ने रख दिया है। उसे हमने 'पंच महाव्रत' कहा। पतंजलि के शास्त्र में वे 'यम' नाम से कहे गये हैं। बुद्ध, महावीर, हिन्दू, वैदिक आदि सभी ने उन्हें मान्य किया था।

व्यवहार और साधना का समन्वय : इस प्रकार व्रत-पालन की यह कल्पना नयी नहीं है। लेकिन समाजसेवा के लिए व्रत-पालन जरूरी है, यह बात बापू ने सर्वप्रथम कही। आध्यात्मिक उन्नति के लिए के यम-नियम जरूरी हैं, ऐसा पहले माना जाता था। योगी, साधक वगैरह आध्यात्मिक विकास के लिए मथने वाले लोग उनका पालन करते थे। लेकिन ये यम-नियम समाज-सेवा के लिए जरूरी है, इनके बिना समाज-सेवा नहीं हो सकती, बल्कि अ-सेवा होगी, यह दृष्टि पहले-पहल बापू ने ही दी। उन्होंने तो यहां तक कह दिया कि सत्य और स्वराज्य दोनों में से कोई एक पसंद करना हो तो मैं स्वराज्य छोड़कर सत्य को स्वीकार करूंगा। यह बात उन्होंने उस युग में कही, जबकि स्वराज्य की भूख तीव्रतम थी। इसमें उनकी प्रतिभा का दर्शन होता है।

आज तक सेवा करने वाले जो अलग-अलग संघटन थे, वे समाज की तरह-तरह से

सेवा करते थे। सेवा के लिए कुछ गुण होने चाहिए, ऐसा तो लोग मानते आये हैं, पर आज तक किसी ने यह नहीं माना था कि देशसेवा के लिए सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य आदि की जरूरत है। इससे उलटे, जिन लोगों ने कहा कि इन व्रतों की व्यक्तिगत क्षेत्र में जरूरत है—जैसे ध्यानयोग के क्षेत्र में, व्यक्तिगत विकास के क्षेत्र में—उन्होंने सेवा का नाम तक नहीं लिया। इन सिद्धांतों के आधार पर मानव-समाज की नवरचना का ठेका उन्होंने कभी नहीं लिया, अथवा इस नींव पर सामाजिक क्रांति की शुरुआत होगी, ऐसा दावा भी उन्होंने कभी नहीं किया।

इस प्रकार समाज-सेवकों ने तो इन व्रतों का नाम तक नहीं लिया, और जिन्होंने इनकी महिमा गायी, उन्होंने लोक-क्रांति अथवा समाज को नया आकार देने की बात कभी नहीं किया।

इस प्रकार समाज-सेवकों ने तो इन व्रतों का नाम तक नहीं लिया, और जिन्होंने इनकी महिमा गायी, उन्होंने लोक-क्रांति अथवा समाज को नया आकार देने की बात कभी नहीं की। इससे एक 'स्प्लिट पर्सनालिटी' (विच्छिन्न व्यक्तित्व) बनती रही। व्यक्तिगत शुद्धि के लिए एक विचार और सामाजिक शुद्धि के लिए दूसरा विचार। लेकिन इन दोनों का समन्वय कर दिखाया गांधीजी ने। समाज-सेवा, राजनीति, रचनात्मक कार्यक्रम, लोक-संघटन, लोक-शिक्षण आदि अनेक बाह्य कार्यों के साथ सत्य, अहिंसा आदि जरूरी हैं, यह कहने की पहल गांधीजी ने की। उन्होंने कहा कि ''सत्य, अहिंसा आदि बुनियादी चीजें हैं और उन्हीं की आधारशिला पर ही समाज का उत्थान किया जा सकता है, समाज-सेवा के लिए वे अनिवार्य हैं और जन-सेवा की वे कसौटी भी हैं।'' इस तरह गांधीजी की विशेषता यह मानी जायेगी कि सामाजिक, राजनैतिक समस्याओं के हल के लिए उन्होंने आत्मिक शक्ति का उपयोग कर दिखाया। व्यक्तिगत जीवन में आत्मबल सफल होता है, यह तो समाज ने भलीभांति देख लिया है। लेकिन सामाजिक क्षेत्र में व्यापक परिणाम में भी इस शक्ति का उपयोग किया जा सकता है, यह गांधीजी ने बताया।

सामूहिक साधना का मिशन : सत्य अथवा दूसरा कोई भी गुण पहले व्यक्ति के प्रकट होता है, जैसे कि विज्ञान का प्रयोग पहले प्रयोगशाला में होता है। व्यक्ति का जीवन एक प्रयोगशाला है। उसमें प्रयोग सफल हो, तो उसे समाज में व्यापक परिमाण में लागू करना चाहिए। गुण-विकास का जो प्रयोग व्यक्ति के जीवन में सफल हुआ, उसे समाजव्यापी बनाना चाहिए। व्यापक सत्य, व्यापक प्रेम, व्यापक करुणा—गांधीजी इस कार्य में लग गये। इसी से वे कहते कि मैं अपूर्ण हूं। केवल व्यक्तिगत प्रयोग से समाधान पा लेना होता, तो वह कभी का पूरा हो जाता। लेकिन जहां सामाजिक प्रयोग करना है, वहां हमारे भाग्य में अपूर्णता ही रहने वाली है। हमारे बाद आने वाले अधिक पूर्णता लायेंगे। इस तरह कभी-न-कभी पूर्ण दर्शन होगा। गांधीजी ने सामूहिक साधना का यह विचार हमारे सामने रखा और स्वयं जीवनभर उसका प्रयोग किया। सर्वोदय का जो नया मिशन उन्होंने हमारे सामने रखा है, वह ऐसी ही सामूहिक साधना का मिशन है।

जिस-जिस जमाने में जो भावना प्रधान होती है, उस-उस जमाने का वह ब्रह्म है, हर युग में ब्रह्म बदलता रहता है। एक समय हमारे सामने 'स्वराज्य' का ब्रह्म था, आज सर्वोदय का ब्रह्म है। इस तरह युग के अनुसार भिन्न-भिन्न ब्रह्म हमारे सामने आये हैं। वेद में कहा है—*अचित्तं ब्रह्म जुजुषुर् युवानः*—जवानों को अनदेखे को देखने में, अथाह की थाह लेने में मजा आता है। आज तक जिसका चिन्तन किसी ने न किया हो, वैसा ब्रह्म युवकों को पसंद आता है। वे नया ब्रह्म चाहते हैं, पुराना ब्रह्म उन्हें पसंद नहीं। नया ब्रह्म पैदा होता है, तो लोग उसके लिए नयी तपस्या करते हैं। आज के जमाने के लिए ऐसा नया ब्रह्म गांधीजी हमें सुझा गये हैं और वह है, सर्वोदय। ❑

1 जनवरी : महादेव देसाई जयंती

गांधी की व्यथा

❑ **राजीव रंजन गिरि**

वैचारिक विकास के साथ-साथ व्यक्ति अपना 'व्यक्तिगत धर्म' खुद गढ़ता है। इंसान जैसा समाज बनाना चाहता है, जैसे राष्ट्र-निर्माण का सपना देखता है उससे उसका 'सामाजिक धर्म' बनता है। गांधीजी अस्पृश्यता को हिन्दू धर्म का कलंक मानते थे, इसलिए वे अपना सामाजिक धर्म समझते थे कि ऐसे मंदिरों में न जाया जाए, जिसमें हरिजनों का प्रवेश वर्जित है। अपने इस विचार के कारण उन्होंने पुरी मंदिर में प्रवेश को धर्म नहीं, मूढ़ श्रद्धा कहा था। –सं.

महात्मा गांधी के सचिव थे महादेव भाई देसाई। महादेव भाई उन अर्थों में सचिव नहीं थे, जैसे आज के ज्यादातर सचिव होते हैं। महादेव भाई सच्चे अनुयायी थे गांधीजी के। सहयोगी भी। गांधीजी की चिन्ता और चिन्तन से इत्तेफाक रखते थे। इनके शब्द और कर्म के प्रति भरोसा का भाव था महादेव भाई के मन में। गांधीजी भी महादेव भाई के प्रति अपने निकट का संबंध स्वीकार करते थे। महादेव भाई के गांधीजी के जीवन से जुड़े अनेक छोटे-बड़े प्रसंगों को लिखा है। अपनी डायरी में।

डेलांग, उड़ीसा में गांधी सेवा संघ की वार्षिक बैठक थी। इस बैठक में महादेव भाई की पत्नी शामिल हुई थीं। इस मकसद से कि पुरी जा सकेंगी। महादेव भाई की पत्नी को यह मालूम नहीं था कि पुरी का मंदिर हरिजनों के लिए वर्जित है। वे गांधीजी की हरिजन-यात्रा के दौरान जेल भी गयी थीं। इस बैठक

के पहले दिन के भाषण में गांधीजी ने कहा भी था कि ''जगन्नाथ का मंदिर हरिजनों के लिए खुला हुआ नहीं है और जब तक यह स्थिति बनी हुई है, तब तक उनके विचार से जगन्नाथ, जगन्नाथ नहीं हैं। वे केवल उन लोगों के नाथ हैं जो उनकी छाया तले फलते-फूलते हैं।'' महादेव भाई को लगा कि यह भाषण उनकी पत्नी समेत सभी लोगों के लिए चेतावनी जैसा होगा जो वहां जाना चाहते हैं। लिहाजा वे पुरी मंदिर नहीं जायेंगे। हालांकि महादेव भाई के मन में आशंका भी थी कि उनकी पत्नी पुरी जरूर जायेंगी। साथ में कस्तूरबा गांधी भी जा रही थीं। महादेव भाई ने मान लिया कि कस्तूरबा मंदिर के बाहर ही रहेंगी। इसका असर उनकी पत्नी और अन्य लोगों पर भी होगा और कोई भी अंदर नहीं जायेगा। महादेव भाई ने जैसा सोचा, वैसा हुआ नहीं। उनकी पत्नी मंदिर में गयीं। कस्तूरबा गांधी भी। साथ गये कुछ लोग भी अंदर गये। महादेव भाई के 'नादान बेटा' (जिन्हें हम लोग नारायणभाई देसाई के नाम से जानते हैं) और साथ गये कुछ सदस्य बाहर ही रहे। इनके बेटे का पंडों से खूब झगड़ा भी हुआ।

इन लोगों के वापस आने के बाद गांधीजी को सारी बात मालूम हुई। उन्हें काफी दुख हुआ। रात भर नींद नहीं आयी। उन्होंने महादेव भाई, उनकी पत्नी दुर्गा बाई और कस्तूरबा गांधी को बुलाकर पूछा। इन लोगों ने जो सफाई दी, उससे गांधीजी को संतोष नहीं हुआ। वे और भी चिढ़ गये। उन्होंने महादेव भाई को ही मुख्य रूप से दोषी माना। गांधीजी का कहना था कि महादेवभाई को अछूतोद्धार आंदोलन, हरिजन-यात्रा की पृष्ठभूमि सबको समझानी चाहिए थी कि ''किस प्रकार सन् 1934 में गांधीजी पुरी गये थे, किस प्रकार से वहां पर सुनियोजित ढंग से हिंसा की गयी थी और कैसे उन्हें उड़ीसा की पदयात्रा करनी पड़ी थी, कैसे सुधारकों को चेतावनी दी गयी थी कि जब तक हरिजनों को प्रवश नहीं दिया जाता तब तक वे लोग मंदिर में न जायें।'' यह सब सुनने के बावजूद यदि महादेव भाई की पत्नी कहना न मानतीं तो गांधीजी की मदद लेनी चाहिए थी। अगर तब भी वे जाने का आग्रह करतीं तो उन्हें जाने दिया जाता। महादेव भाई ने ऐसा नहीं किया। गांधीजी का मानना था कि ऐसा नहीं करने से पता चलता है कि महादेव भाई पूरी तरह से सावधान नहीं थे। ऐसा करके महादेव भाई ने गांधीजी के प्रति, अपनी पत्नी के प्रति तथा जिस उद्देश्य को लेकर वे सभी चल रहे थे, उसके प्रति अन्याय भी किया है।

गांधी सेवा संघ के सदस्यों के सामने गांधीजी ने इस बारे में अपनी व्यथा सुनायी। उन्होंने कहा कि ''आप चाहे चरखा संघ, देहाती धंधे या हरिजनों का काम करते हों, जो कुछ काम आप करते हैं, वह तो केवल एक बहाना है। उस बहाने हम यह देखना चाहते हैं कि सत्य कहां तक चल सकता है। अहिंसा हमको कहां तक ले जा सकती है। हम अहिंसा के साथ रहे हैं। लेकिन असली परीक्षा इसमें नहीं है। सबका निचोड़ तो यह हो जाता है कि उससे हमें आजादी प्राप्त हो। इसलिए हम इन सब प्रवृत्तियों को चला रहे हैं। लेकिन अछूतपन का विचार हमको इस तरह नहीं करना चाहिए। हमको तो यह प्रार्थना करनी चाहिए कि अगर अछूतपन हिन्दू धर्म का अंग है और वह नहीं मिट सकता तो फिर भले ही हिन्दू धर्म ही मिट जाये। अछूतपन जैसा धब्बा किसी कौम पर न रहे।...मैं वर्षों से चीख-चीख कर कह रहा हूं कि जिस मंदिर में हमारे अछूत भाई नहीं जा सकते, वहां हम न जायें। क्या उस मंदिर में मेरी पत्नी, लड़की या मां जा सकती है? हमारा कर्तव्य है कि उन्हें समझायें और यदि वे न माने तो हमारा कर्तव्य है कि माता को भी त्यज दें और पिता को भी।'' गांधीजी के इस उद्धरण में तीन बातें काबिलेगौर हैं। एक, हम जो भी काम कर रहे हैं, उसके रास्ते देखना है कि सच्चाई और अहिंसा के जरिए हम कहां तक जा सकते हैं। हम जो भी काम कर रहे हों, उसकी बुनियाद में सत्य और अहिंसा है या नहीं।

दो, छुआछूत यदि हिन्दू धर्म का अंग है और यह खत्म नहीं हो सकता तो इससे बेहतर है कि हिन्दू धर्म ही खत्म हो जाये। हमें यह प्रार्थना करनी चाहिए कि या तो अस्पृश्यता खत्म हो या हिन्दू धर्म। दोनों साथ-साथ नहीं चल सकते। छुआछूत कायम रहने की हालत में हिन्दू धर्म का खात्मा गांधीजी को मंजूर था। यह उस व्यक्ति का कहना था जो खुद को सच्चा हिन्दू मानता था और सार्वजनिक तौर पर स्वीकार भी करता था। यह उस शख्स का स्पष्ट मत था, जो पूरी साफगोई से बताता था कि 'मैं हिन्दू क्यों हूं'? छुआछूत को खत्म करने के लिए गांधीजी जद्दोजहद कर रहे थे, उसकी स्वाभाविक परिणति इस विचार में झलकती है। इसमें उजागर हुई है एक सच्चे धार्मिक की व्यथा। अस्पृश्यता को समाप्त करने की प्रतिबद्धता के परिणामस्वरूप जो आंतरिक पीड़ा गांधी के मन में थी, उसे यह तो गवारा था कि हिन्दू धर्म समाप्त हो जाये, पर यह कतई मंजूर नहीं था कि किसी के साथ छुआछूत बरता जाये। यह एक वैष्णव की पुकार थी। इन्हीं विचारों के कारण नरसी मेहता की रचना 'वैष्णव जन तू तेने कहिए पीर पराई जाने रे' गांधीजी के सबसे पसंदीदा भजनों में शुमार था। गांधीजी का दृढ़ विश्वास था कि अस्पृश्यता हिन्दू धर्म का अंग नहीं है। यह विकृति कालांतर में इस धर्म में समा गयी। हिन्दू धर्म ही नहीं, किसी भी कौम में छुआछूत की रवायत रहे, इसे वे गलत मानते थे। छुआछूत को वे धब्बा मानते थे। इसकी सफाई जल्दी करना जरूरी समझते थे।

तीन, उनकी इच्छा थी कि दूसरे लोग उस मंदिर में न जाएं जब तक (तथाकथित) 'अछूतों' के लिए खोल न दिया जाये। ऐसी कामना वे परिवार के सदस्यों से भी करते थे। अगर परिवार के सदस्य न मानें, ऐसे मंदिरों में जायें तो उनको त्याग दिया जाये। भले ही इसमें माता-पिता ही क्यों न हों! इतनी कठोर

शर्त कायम की थी अपने विचारों की प्रतिबद्धता के कारण। आखिर ऐसा क्यों सोचते थे गांधीजी? उन्होंने पुरी मंदिर के प्रसंग में कहा कि ''महादेव अपने धर्म को भूल गया। उसने सोचा उन्हें श्रद्धा है तो मैं क्यों खलल पहुंचाऊं? उसने उस मूढ़ श्रद्धा को धर्म मान लिया। उसने यह नहीं सोचा कि वह तो बूढ़ा (गांधीजी) पड़ा है, उसके दिल पर क्या असर होगा, समाज पर क्या असर होगा? हमें व्यक्तिगत धर्म और सामाजिक धर्म को समझ लेना चाहिए।''

गांधीजी द्वारा पेश कठोर शर्त का कारण धर्म, मूढ़ श्रद्धा, व्यक्तिगत धर्म और सामाजिक धर्म के बीच के रिश्ते को समझने पर पता चलता है। अपना कौन-सा धर्म भूल गये थे महादेव भाई? क्या यह माना जाए कि गांधीजी की हरिजन-यात्रा, जिसके प्रति महादेव भाई की भी प्रतिबद्धता थी, को भूल गये थे। क्या इन्होंने अपनी पत्नी की मूढ़ श्रद्धा को धर्म मान लिया था? सच तो यह है कि महादेव भाई भूले नहीं थे। महादेव भाई ऐसे मंदिरों में भी जाने के विरुद्ध थे, जो हरिजनों के लिए तो खोल दिये गये हों, पर जिनमें बेईमान पंडों का आश्रय हो। हां, उन्होंने इस मसले पर थोड़ा कम ध्यान दिया था। उनको यह भी लगा था कि ''गांधीजी के हृदय की विशालता तो असीम है और उन्होंने मंदिर जाने का इतना आग्रह रखने वाली मेरी पत्नी को क्षमा कर दिया होगा?'' गांधीजी का हृदय विशाल था और असीम भी। बावजूद इसके वे नाराज थे। उन्होंने माफ नहीं किया था। कारण कि इतिहास के उस दौर में वे व्यक्तिगत धर्म और सामाजिक धर्म के फर्क को समझ रहे थे। इसके प्रति सचेत भी थे। अपनी हरिजन-यात्रा के दौरान उन्होंने श्रद्धा और मूढ़ श्रद्धा को बखूबी देखा था। व्यक्तिगत धर्म और सामाजिक धर्म का अंतर्द्वंद्व देखा था।

गांधीजी व्यक्तिगत धर्म और सामाजिक धर्म को समझने का इसरार कर रहे थे। इसका आशय क्या है? क्या इंसान का व्यक्तिगत धर्म अलग होता है और सामाजिक धर्म अलग? क्या व्यक्तिगत धर्म और सामाजिक धर्म में विलोम का रिश्ता अनिवार्य है? पुरी मंदिर का यह प्रसंग जेहन में रखने पर कहा जा सकता है कि महादेव भाई की पत्नी दुर्गाबाई, कस्तूरबा गांधी आदि लोग व्यक्तिगत धर्म के अनुसार मंदिर में जाने के आग्रही हो सकते हैं; पर सामाजिक धर्म के मुताबिक नहीं। यह इसलिए कहा जा रहा है क्योंकि गांधीजी ने कहा था कि महादेव ने सोचा था कि उन्हें श्रद्धा है तो मैं क्यों खलल पहुंचाऊं। यह भी कहा कि ऐसा कर मूढ़ श्रद्धा को धर्म मान लिया महादेव ने।

इसके बाद गांधीजी ने व्यक्तिगत धर्म और सामाजिक धर्म समझने का इसरार किया और कहा कि महादेव भाई ने यह नहीं सोचा कि गांधी पर क्या असर होगा? समाज पर क्या असर होगा? यानी समाज पर पड़ने वाले असर से हमारे सामाजिक धर्म का पता चलता है। समाज के प्रति हमारा दायित्व क्या है; हमारे किसी भी कदम से समाज पर क्या प्रभाव पड़ेगा, इसकी याद दिला रहे थे गांधीजी। उल्लेखनीय है कि परंपरा द्वारा अपने परिवार में बाल्यावस्था से विकास के क्रम में हम जो देखते-सीखते हैं, वह हमारा व्यक्तिगत धर्म बन जाता है।

गांधीजी ने मूढ़ श्रद्धा को धर्म मानने से रोका था। मतलब कि कस्तूरबा, दुर्गाबाई सहित जो लोग पुरी मंदिर में गये, वे सोचकर तो यह गये कि अपने धर्म के मुताबिक आचरण कर रहे हैं। धर्म के अनुसार पुरी मंदिर में जा सकते हैं, पर वह उनका धर्म नहीं था; मूढ़ श्रद्धा थी। कारण कि हिन्दू धर्म के एक तबके को मंदिर में प्रवेश करने से रोका गया था। ऐसे में, मंदिर में बा और दुर्गाबाई सरीखे लोगों के जाने से, हरिजनों का प्रवेश रोकने वालों को सामाजिक वैधता मिलती। साथ ही मंदिर में सभी लोग जायें, ऐसा मानने वालों को धक्का पहुंचता। यहां यह भी याद रखना होगा कि बा और दुर्गाबाई दोनों छुआछूत के विरोध में गांधीजी द्वारा चलाये जा रहे हरिजनों के मंदिर-प्रवेश आंदोलन के साथ थे। पर इसके लिए पुरी मंदिर का बहिष्कार किये जाये, ऐसा नहीं मानते थे।

गांधीजी ने जो कठोर बात कही कि जिस मंदिर में अछूत भाई-बहन नहीं जा सकते, उसमें जाने वाले माता-पिता को त्यज दिया जाये, समाज पर पड़ने वाले असर के हिसाब से कही गयी बात है। कोई तर्क कर सकता है कि जैसे बा और दुर्गाबाई को अपनी परवरिश के साथ परिवार से जो व्यक्तिगत धर्म मिला, इन लोगों ने जगन्नाथ पुरी मंदिर में प्रवेश कर इस व्यक्तिगत धर्म का अनुसरण किया। पर छुआछूत मुक्त समाज का जो सपना इन लोगों ने देखा था, और इस सपने से जो 'सामाजिक धर्म' निर्मित हुआ था, उसके मुताबिक इन्हें मंदिर में नहीं जाना चाहिए था। कोई यह भी कह सकता है कि परिवार और समाज से जैसा व्यक्तिगत धर्म बा, और दुर्गाबाई को मिला था, वैसा ही गांधीजी को भी मिला। इस हिसाब से छुआछूत का बोध भी मिला। तो फिर गांधीजी से इनका व्यक्तिगत धर्म अलग कैसे था?

अपने वैचारिक विकास के साथ-साथ व्यक्ति अपना 'व्यक्तिगत धर्म' खुद गढ़ता है। इंसान जैसा समाज बनाना चाहता है, जैसे राष्ट्र-निर्माण का सपना देखता है उससे उसका 'सामाजिक धर्म' बनता है। अपने यूटोपिया के हिसाब से गढ़े गये सामाजिक धर्म के मुताबिक अपने व्यक्तिगत धर्म को बनाना होता है, ताकि कथनी-करनी में एका हो जाये। चूंकि गांधीजी अस्पृश्यता को हिन्दू धर्म का कलंक मानते थे, इसलिए वे अपना सामाजिक धर्म समझते थे कि ऐसे मंदिरों में न जाया जाये, जिसमें हरिजनों का प्रवेश वर्जित है। अपने इस विचार के कारण उन्होंने पुरी मंदिर में प्रवेश को धर्म नहीं, मूढ़ श्रद्धा कहा था।

गांधीजी ने अपनी हरिजन-यात्रा इसी मूढ़ श्रद्धा के खिलाफ शुरू की थी। बा, दुर्गाबाई आदि लोगों के मंदिर में जाने से गांधीजी को गहरा धक्का लगा। बकौल गांधीजी ''मैं निस्तेज हो गया। मेरा दिमाग

इस तरह गरम हो गया कि मानों नसें टूटने की नौबत आ गयी। उस बात को जब सोचता था तो ब्लड-प्रेशर खूब बढ़ जाता। मुझे इसकी परवाह नहीं थी कि वह बढ़ रहा था। 'गीता' की भाषा जानने वाले कहेंगे कि इन चीजों का ऐसा असर नहीं होना चाहिए।'' 'गीता' को अत्यधिक महत्त्व देने वाले गांधीजी नहीं चाहते थे कि इन चीजों का उन पर असर न हो। उन्होंने साफ-साफ कहा है कि ''मैं ऐसा नहीं बनना चाहता कि किसी चीज का असर मुझ पर न पड़े। 'गीता' में त्रिगुणातीत के लक्षण मैंने पढ़े हैं। लेकिन वह तो आदर्श है। बाकी हम सब तो वहीं तक जा सकते हैं जहां तक हमको सात्विकता ले जाये। अगर मुझ पर किसी चीज का असर न हो तो मैं मूढ़ बन जाऊंगा। अगर इस तरह हमें सदमा न पहुंचे तो हम कोई काम नहीं कर सकते।'' इसलिए गांधीजी त्रिगुणातीत आदर्श को मानते हुए भी 'सदमा' जरूरी समझते थे। 'सदमा' का लगना इंसान की भावना के सजीव होने का परिचायक है। जब किसी चीज का असर नहीं पड़े तो इंसान मूढ़ बन जाता है। भावनाशून्य बन जाता है। पत्थर हृदय बन जाता है। ऐसे में, क्या कोई व्यक्ति मनुष्य रह पाता है?

गांधीजी इस सदमे के लिए भी खुद को जिम्मेवार मानते थे। उन्होंने कहा था कि सदमे का करण यह नहीं है कि 'वे तीन औरतें चली गयीं, लेकिन यह कि उन्हें सही तालीम नहीं मिली। महादेव अपने धर्म को भूल गया।' यानी गांधीजी की पीड़ा के कारण थे—मंदिर में जाने वालों को सही तालीम नहीं मिलना और गांधीजी की समझ के मुताबिक महादेवभाई का अपना धर्म भूल जाना। गांधीजी इन्हें सही तालीम न मिलने को लेकर व्यथित थे। उन्होंने कहा कि 'पचास साल मेरे साथ गृहस्थाश्रम करने के बाद वह (बा) वहां क्यों गयी? और वे दूसरी दो औरतें भी क्यों गयीं? वे तो मेरी लड़कियां हैं। वह भी मेरी गलती है। उनके इस कृत्य से हमारी आत्मिक शक्ति का ह्रास हुआ है।' गांधीजी के साथ रहने पर भी अगर बा, दुर्गाबाई आदि में ऐसी चेतना न पनपी कि पुरी मंदिर में नहीं जाना चाहिए तो यह उनका (गांधीजी) दोष है। गांधीजी दूसरे को इसके लिए जिम्मेवार ठहराकर खुद को अलग नहीं करते थे। अपितु वे इन सबके लिए खुद को दोषी मानकर व्यथित होते थे, पश्चात्ताप करते थे। आत्मशुद्धि भी करते थे।

इसके बाद जो गांधीजी ने कहा वह और मानखेज है। 'हम औरतों को औरतें समझकर इन बातों की उपेक्षा करते हैं। यह अहिंसा का मार्ग नहीं है। यह जागृति का विषय है।' औरतों को औरतें समझकर इन बातों की उपेक्षा गौरतलब है। यह बताता है कि परंपरा प्रदत्त मान्यताएं औरतों को कमतर मानने की थी। गांधी के कथन में पहले प्रयुक्त 'औरतों' संज्ञा सूचक है जबकि बाद में प्रयुक्त 'औरतें' विशेषण। यहां 'औरतें' हीनतर के पारंपरिक बोध के लिए विशेषण के रूप में उपयोग में लाया गया है। गोया पुरुषों ने ऐसा किया होता तब तो चिन्ताजनक था पर औरतों ने किया है तो उपेक्षणीय है! औरतों की चेतना को कमतर मानने का नतीजा होती है ऐसी उपेक्षा। इसीलिए गांधीजी ने एक बार राजेन्द्र प्रसाद की बहन को भी मंदिर प्रवेश से रोका था। गांधीजी का ठीक अनुमान था कि 'कोई कहेगा कि मैंने अनुचित दबाव डाला।' इसके जवाब में इन्होंने कहा कि 'मैं कहता हूं मैंने उसको अधर्म से बचाया। मैंने यदि दस्तांदाजी की है तो धर्म के नाम पर की है।' ऐसे मंदिरों में प्रवेश, जहां हरिजनों का जाना मना है, गांधीजी के मुताबिक अधर्म है। लिहाजा मंदिर जाने से रोकना धर्म का काम है। गौरतलब है कि ऐसा कर गांधीजी, धर्म को लेकर जो मान्यताएं समाज में व्याप्त थीं उसे, दरका रहे थे। तथाकथित अछूतों को मंदिर प्रवेश का अधिकार मिले। इसके लिए गांधीजी हरिजन-यात्रा करके जनजागरण कर रहे थे, आंदोलन चला रहे थे। इससे धर्म और अधर्म की नई परिभाषा निर्मित हो रही थी।

गांधीजी की व्यथा का एक बड़ा कारण था—कस्तूरबा और दुर्गाबाई का पुरी मंदिर में जाना। बा उनकी पत्नी थीं और दुर्गाबाई उनके आत्मीय महादेव भाई की पत्नी। इन दोनों के मंदिर-प्रवेश से, बा और दुर्गा बाई पर गांधीजी द्वारा प्रसारित चेतना के अभाव का पता चलता है। इससे समाज में यह संदेश जाता कि गांधी जो स्वप्न देख रहे हैं, और उसके लिए जो आग्रह कर रहे हैं, उनसे अनन्य रूप से जुड़े लोग ही उसका पालन नहीं करते। शब्द और कर्म में एका रखने वाले गांधीजी के लिए यह पीड़ादायी बात थी। हिन्दी-उर्दू भाषी इलाके में उन्नीसवीं सदी में जो लेखक नवजागरण की चेतना के लिए अंधविश्वास और बाह्य आडंबर के खिलाफ साहित्य रच रहे थे, उनकी आलोचना में यह बात भी बतायी जाती है कि पत्नी इस चेतना से वंचित थी। घर में पत्नी अंधविश्वास एवं आडंबर का पालन करती थी और पति बाहर नवजागरण की चेतना के प्रसार में जुटे थे। गांधी का मन यह स्वीकार नहीं कर सकता था। गांधीजी ने जो व्यक्तिगत धर्म गढ़ा था वैसा धर्म उनके सहयोगियों का भी हो, ऐसा अरमान था उनका। इसलिए वे कहते थे कि 'उनका और मेरा अगर समान धर्म हो जाये तब तो मैं समाज को भी समझाऊंगा कि ऐसे मंदिरों में क्या पड़ा है? और अगर जाना ही है, तो वहीं तक जाएं जहां तक हरिजन जाते हैं। सिर्फ झाड़ू लगा देने से हरिजनों के साथ तादात्म्य सिद्ध नहीं होता। जो मंदिर सैकड़ों, हजारों वर्षों से पवित्र गिने गये हैं, जहां जाने के लिए हम तरसते हैं, वहां पर भी अगर हम सिर्फ इसलिए न जाएं कि हमारे हरिजन भाई नहीं जा पाते तो वह बड़ा भारी धर्म कृत्य होगा।'

गांधी की व्यथा का कारण था हरिजनों के प्रति समाज में मौजूद छुआछूत; परिणाम-स्वरूप मंदिर प्रवेश की मनाही। गांधी इन दोनों के विरोध के प्रति प्रतिबद्धता जाहिर कर चुके थे। हरिजनों के मंदिर प्रवेश के साथ उनकी यह अभिन्न प्रतिबद्धता धर्म, श्रद्धा और आस्था की संरचना को पुनर्परिभाषित कर रही थी; सर्वथा नया गढ़ रही थी। ❑

जेपी और कश्मीर

❑ रामचंद्र गुहा

कश्मीर एक बार फिर धधक रहा है, उसे जितना धमकाया जाता है, वह उतना ही धधकता जाता है। लेकिन एक दूसरा रास्ता भी है–जेपी का रास्ता! आजादी मिलने से पहले से लेकर अपने जीवन के आखिरी दिनों तक कश्मीर को न्याय व सहानुभूति के तराजू पर रखकर, एक नई संभावना को जिस तरह जेपी ने उभारा, उसकी दूसरी मिसाल नहीं है। –सं.

करीब पचास बरस पहले 4 अक्टूबर 1966 को जेपी ने नई दिल्ली में कश्मीर पर हुए एक सेमीनार में अपने विचार रखे थे। तब घाटी में उथल-पुथल मची थी। लोकप्रिय नेता शेख अब्दुल्ला गिरफ्तार कर लिये गये थे। राज्य सरकार की छवि आम तौर पर अक्षम और भ्रष्ट सरकार की बन गयी थी। जेपी ने अपनी बात स्पष्ट तौर पर यह कहते हुए शुरू की थी कि यह भारत सरकार और राज्य के लोगों के बीच का विवाद है। जेपी मानते थे कि अतीत की अपनी विश्वासघाती कार्रवाइयों के कारण कश्मीर में पाकिस्तान की कोई भूमिका बची नहीं है। जैसा कि उन्होंने कहा, पाकिस्तान की सरकार की असली मंशा घाटी पर कब्जा करने की है। बल के साथ उसने दो बार इसे हथियाने की कोशिश की, लेकिन वह नाकाम हो गयी।

लेकिन यदि पाकिस्तान को समीकरण से बाहर भी रखा जाये तब भी समस्या बनी रहेगी। जेपी ने 1966 में कहा था, ''वास्तव में आज कश्मीर के लोगों में पहले से कहीं अधिक असंतोष है। उनमें पहले से अधिक भारत विरोधी भावनाएं हैं।''

सरकार को इस असंतोष पर किस तरह की प्रतिक्रिया व्यक्त करनी चाहिए? जेपी बहुत स्पष्ट थे। उन्होंने कहा, ''यदि भारत कश्मीरी लोगों को बलपूर्वक दबाने की कोशिश करता है, तो यह भारत की आत्मा के लिए आत्मघाती होगा।'' दमन पर विश्वास करने की बजाय भारत सरकार यह कर सकती है कि वह सन् 1947-1953 के दिनों की ओर लौटे, यानी उस समय जब इस राज्य का भारत में सिर्फ तीन विषयों—रक्षा, विदेश मामले और संचार—के आधार पर विलय हुआ था। इसका अर्थ था कि उसे जितना संभव हो, स्वायत्ता दी जायेगी।

अक्टूबर, 1966 में जयप्रकाश नारायण ने जोर देकर कहा था, ''यदि कश्मीर में हम निरंतर बलपूर्वक शासन करते हैं और इन लोगों को दबाते हैं या उपनिवेशिकरण के जरिए उनके राज्य के जातीय या धार्मिक चरित्र को परिवर्तित करते हैं तो मैं समझता हूं कि राजनीतिक रूप से यह घोर निन्दनीय कृत्य होगा।'' वे आगे कहते हैं, ''कश्मीर की हमें भारी कीमत चुकानी पड़ी है। और यही सही समय है, जब इस देश के हर देशभक्त को गंभीरतापूर्वक एक अच्छे समाधान के बारे में सोचना चाहिए। मैं आपको बता चुका हूं कि मेरे विचार से एक अच्छा समाधान है पूर्ण आंतरिक स्वायत्तता!

कश्मीरियों के सम्मान और उनकी बेहतरी की जेपी की चिन्ता दीर्घकालिक थी। इस विषय पर उनके अनेक (सारे नहीं) वक्तव्य सन् 2005 में प्रकाशित पुस्तक 'जेपी ऑन जम्मू एंड कश्मीर' में समाहित हुए थे। इसका संपादन श्री बलराज पुरी ने किया था।

सन् 1966 में दिल्ली में हुए इस संवाद से दो वर्ष पूर्व जेपी ने एक अंग्रेजी दैनिक में कश्मीर पर एक निबंध लिखा था। इसमें उन्होंने रेखांकित किया था कि इससे फर्क नहीं पड़ता कि हम कितनी आक्रामकता के साथ जोर देकर कहें कि कश्मीर का भारत में विलय अंतिम है और इसे बदला नहीं जा सकता, दुनिया इसे स्वीकार नहीं करेगी। 'अजाद कश्मीर' का हिस्सा पाकिस्तान के नियंत्रण में बना रहेगा, संघर्ष विराम रेखा कायम रहेगी, दोनों देशों की सेनाएं आमने-सामने बनी रहेंगी, दोनों देशों में अल्पसंख्यक भय के साथ जीने को मजबूर होंगे, कश्मीर में असंतोष उबलता रहेगा और संभव है कि हमें इसे बल से शांत करना पड़े।'

जेपी लगातार 1960 और 1970 के दशकों में कश्मीर में न्याय के लिए दबाव बना रहे थे। उन्होंने ऐसा नेहरू के प्रधानमंत्री रहते, शास्त्री के प्रधानमंत्री रहते और इंदिरा गांधी के प्रधानमंत्री रहते भी किया। जून, 1966 में उन्होंने श्रीमती गांधी को इस समस्या के बारे में एक उल्लेखनीय पत्र लिखा, जिसने देश को वर्षों से जकड़ रखा था। जेपी मानते थे, ''यह समस्या इसलिए कायम नहीं है कि पाकिस्तान कश्मीर पर कब्जा करना चाहता है, बल्कि इसलिए कायम है कि वहां के लोगों में गहरा राजनीतिक असंतोष है। भारत के लोगों को घाटी की वास्तविक स्थिति को लेकर भ्रम में रखा जा सकता है, मगर दिल्ली में प्रत्येक कार्यालय और तकरीबन प्रत्येक विदेशी संवाददाता सच से परिचित हैं।''

जेपी ने प्रधानमंत्री को लिखा, ''कश्मीर के कारण दुनिया में भारत की छवि खराब हुई है, क्योंकि वहां अभी तक कुछ भी नहीं हुआ है। भारतीय लोकतंत्र पर लगे इस एकमात्र काले धब्बे से छुटकारा पाने का एक तरीका यही है कि कश्मीरियों को पूर्ण आंतरिक स्वायत्तता का आश्वासन दिया जाये यानी विलय की मूल शर्तों पर अमल किया जाये।''

श्रीमती गांधी को अपने पत्र में जेपी ने आगे लिखा, ''यह सोचना कि हम अंततः लोगों को पराजित कर देंगे और उन्हें बिना किसी प्रतिरोध के विलय को स्वीकार करने के लिए मजबूर कर देंगे, खुद को भ्रम में डालने जैसा है। यह कल्पना संभवतः तब हकीकत में बदल सकती थी, जब कश्मीर भौगोलिक रूप से वहां नहीं होता, जहां वह स्थित है। वह जहां स्थित है और लोगों में जिस तरह का

असंतोष है, वैसे में पाकिस्तान कभी भी वहां शांति कायम होने नहीं देगा।''

प्रधानमंत्री ने जेपी को पत्र भेजकर कश्मीर पर अपनी राय साझा करने के लिए धन्यवाद दिया। लेकिन उनके पत्र पर कोई कार्रवाई नहीं की। इससे आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि इंदिरा गांधी जेपी को नापसंद करती थीं। हालांकि पचास वर्ष बाद, नई दिल्ली में आज जो सरकार है वह जेपी के प्रति गहरा सम्मान व्यक्त करती है, सिर्फ इसलिए नहीं कि जेपी ने इंदिरा गांधी के अधिनायकवादी शासन के खिलाफ संघर्ष किया था बल्कि इस कारण भी कि जिसे प्रधानमंत्री और उनके मंत्रिमंडल के कई सहयोगी भी कृपापूर्वक कह चुके हैं कि उन्हें जेपी आंदोलन के दौरान ही राजनीतिक दीक्षा मिली। नरेन्द्र मोदी और उनके मंत्री कहते हैं कि वे जेपी का आदर करते हैं।

लेकिन क्या वे जेपी ने कश्मीर पर जो कहा, उसे सुनेंगे और उस पर आगे बढ़ेंगे? घाटी में आज असंतोष 1966 की तुलना में कहीं अधिक गहरा है। जेपी के समय से आज जो बड़ा बदलाव आया है, वह है घाटी में कट्टरपंथी इस्लाम का बढ़ता प्रभाव। जेपी होते तो इसकी निन्दा करते। लेकिन वे भारतीय राज्य द्वारा लगातार किये जा रहे उत्पीड़न की भी निन्दा करते। वे इस बात का भी नोटिस लेते कि इंटरनेट के इस युग में कश्मीर में जो कुछ हो रहा है, उसके बारे में शेष भारत को भ्रम में नहीं रखा जा सकता।

'जेपी ऑन जम्मू एंड कश्मीर' नामक यह किताब अब भी उपलब्ध है। प्रधानमंत्री, पीएमओ, राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार और गृहमंत्री को इसकी प्रतियां मंगानी चाहिए और इसे सावधानीपूर्वक पढ़ना चाहिए। जेपी के ये शब्द 1966 की तरह आज 2019 में भी प्रासंगिक हैं, ''यदि भारत ने कश्मीरी लोगों को बलपूर्वक दबाने की कोशिश की तो यह भारत की आत्मा के लिए आत्मघाती होगा।'' और ''कश्मीर के कारण दुनिया में भारत की छवि को जितना नुकसान हुआ है, उतना किसी ओर कारण से नहीं हुआ है।'' ❑

आगे आयें उदारवादी बहुसंख्यक

❑ पवन के वर्मा

विवेकवान लोग साथ आयेंगे, तभी हमें राम मंदिर के मुद्दे का समाधान मिल सकेगा। सर्वोत्तम राह यही है कि संवाद की प्रक्रिया उन लोगों से दूर ले जायी जाये जिनकी प्रासंगिकता विवाद के बने रहने से जुड़ी है।

मैं नहीं समझ पाता कि कोई हिन्दू, मुस्लिम या अन्य धर्मावलंबी अयोध्या में राम मंदिर बनाने का विरोध क्यों करेगा। कोई नास्तिक भी यह स्वीकार करेगा कि विशुद्ध संख्या आधारित लोकतंत्र की दृष्टि से भी ऐसे करोड़ों हिन्दू हैं, जो भगवान राम के जन्मस्थली में उनका एक मंदिर बनाकर उन्हें सम्मानित करना चाहते हैं। ऐसे व्यक्ति, जो नास्तिक तो नहीं हैं, किन्तु यह यकीन करते हैं कि एक मंदिर निर्माण पर व्यय होने वाली धनराशि से कोई अस्पताल या स्कूल बनाना उसका बेहतर उपयोग हो सकता है, विवेकहीनता का ही परिचय दे रहे हैं। पहली बात तो यह कि यह कोई यह या वह का मामला नहीं है; हमें अस्पतालों-स्कूलों की जरूरत तो है, पर आस्थावानों को पूजास्थलों की भी जरूरत है।

भगवान राम असीम प्रेम तथा श्रद्धा के पात्र रहे हैं। वे मर्यादा की प्रतिमूर्ति हैं। चाहे वाल्मीकि रचित रामायण हो, कंबन रचित रामायण हो अथवा तुलसीकृत अत्यंत लोकप्रिय रामचरितमानस, वे केवल साहित्यिक प्रतिभा की उपज नहीं, बल्कि अत्यंत धार्मिक ग्रंथ हैं। जब एक हिन्दू की मृत्यु होती है, तो उसके शव को अग्नि संस्कार के लिए ले जाते हुए लोग 'राम नाम सत्य है' का उद्घोष किया करते हैं। महात्मा गांधी, जो स्वतंत्र भारत को 'रामराज्य' जैसा सत्यनिष्ठ बनाना चाहते थे, जब हत्यारे की गोलियों का शिकार बने, तो उनके मुख से निकलने वाले अंतिम शब्द 'हे राम' ही थे।

सो, अयोध्या में राम मंदिर के निर्माण का कोई भी दीर्घकालीन विरोध नहीं हो सकता। सवाल सिर्फ यही किया जा सकता है कि इसे कैसे बनाया जाये, क्योंकि जिस स्थल पर इसे बनाया जाना है और जहां एक पूर्ववर्ती राम मंदिर विद्यमान था, वहां बाबर के वक्त बाबरी मस्जिद के नाम से एक मस्जिद बना दी गयी। वर्ष 1992 में उस मस्जिद को नष्ट कर दिया गया, जो निन्दनीय था, मगर उस भूमि की मिल्कियत का मामला अभी भी हिन्दू एवं मुस्लिम समूहों के बीच विवादित है। वर्तमान में यह मामला सुप्रीम कोर्ट में लंबित है, जिस पर जनवरी में सुनवाई शुरू होने वाली है।

साधारणतः सभी इस बात पर सहमत रहे हैं कि इस विवाद का निबटारा सुप्रीम कोर्ट के फैसले से या सभी हितधारकों के बीच आपसी सहमति से होना चाहिए। यही इस बिन्दु से आगे बढ़ने का सभ्य तरीका है और यह श्रीराम से संबद्ध मर्यादा के अनुरूप भी होगा। वैसे इस प्रश्न पर कि क्या आस्था का कोई मुद्दा किसी विधिक हस्तक्षेप से अंतिम रूप से सुलझाया जा सकता है, मेरे अपने संदेह हैं। अदालत मिल्कियत का फैसला कर सकती है, हालांकि वह भी विरोधी साक्ष्यों की विपुलता की वजह से आसान नहीं होगा, जिसका अधिकांश किसी न्यायिक प्रकृति का नहीं है। पर यदि एक फैसला आ भी गया, जिसे इस अथवा उस पक्ष के विरुद्ध माना गया, तो क्या वह इस विवाद का अंतिम समाधान माना जा सकेगा?

ऐसे में समाधान का दूसरा विकल्प कहीं बेहतर है। इस कटु तथा भेदकारी प्रश्न को पीछे छोड़ने का एक आदर्श रास्ता संवाद ही है। परंतु इस हेतु दोनों पक्षों के लिए यह आवश्यक होगा कि वे अपने गैर-लचीले कट्टर तत्त्वों को नियंत्रण में रखते हुए कोई समझौतावादी रास्ता तलाश करें। एक तरीका यह हो सकता है कि मुस्लिम किसी वैकल्पिक स्थल पर एक मस्जिद के निर्माण हेतु तैयार हो जायें, जबकि हिन्दू यह घोषित कर दें कि काशी, मथुरा या इसी तरह के अन्य विवाद समाप्त समझे जाएं, बाबर द्वारा निर्मित मस्जिद का इसके अलावा कोई विशिष्ट महत्त्व नहीं है कि यह मुस्लिमों द्वारा भारत पर आक्रमण के बाद बनाये गये अनेक मस्जिदों में एक है। चूंकि इस मस्जिद को वर्ष 1992 में निन्दनीय तरीके से नष्ट कर डाला गया, सिर्फ इसलिए इसने अहमियत हासिल कर ली। पर यह इतिहास का एक कलंक है, जिससे सबक सीखा जाना चाहिए कि ऐसी घटनाएं फिर कभी नहीं होने पायें। अभी तो हमें वर्तमान की जरूरतों पर ध्यान देना चाहिए, क्योंकि जब तक यह विवाद अनसुलझा रहेगा, हिन्दू तथा मुस्लिम दोनों पक्षों के अतिवादी तत्त्वों को खुराक मिलती रहेगी।

हिन्दुओं के लिए राम के जन्मस्थल का अत्यंत विशिष्ट महत्त्व है, चाहे इसे ऐतिहासिक दृष्टि से साबित किया जा सकता हो अथवा नहीं। यदि मुस्लिम अयोध्या में ही किसी अन्य स्थल पर मस्जिद निर्माण के बदले इस स्थल पर मंदिर बनने देने के लिए तैयार हो जाते हैं, तो यह एक शानदार भंगिमा होगी। पर इसके लिए मुस्लिम उदारवादी मत को आगे आकर डटते हुए मुट्ठीभर मौलवियों तथा उलेमाओं के उस शिकंजे को तोड़ना होगा, जिसने अभी इस मामले पर उन्हें जकड़ रखा है। लाख टके का सवाल यह है कि क्या उदारवादी मुस्लिम आवाजें इस हकीकत के मद्देनजर इस पहलकदमी के लिए तैयार होंगी कि हिन्दुओं एवं मुस्लिमों की बहुसंख्या अपने समुदायों के कट्टरवादियों को हाशिये पर डालते हुए इस विवाद को समाप्त कर दें, अपनी अमन-चैन भरी जिन्दगियां जीने की इच्छुक है।

हालांकि मेरे परिचित मुस्लिमों की एक बड़ी तादाद ऐसे समाधान की संभावना के प्रति अपनी सहमति व्यक्त करती है, पर यह खेद का विषय है कि उनमें से बहुत कम इसे खुले रूप से उजागर करने को तैयार है। यह सच है कि एक ऐसा समुदाय जो हिन्दू अतिवादियों के भड़काऊ बयानों तथा डरावनी हरकतों से प्रायः घिरा हुआ महसूस करता है, भय की मानसिकता से ग्रस्त हो सकता है। पर यह सवाल तो अब भी प्रासंगिक है कि मुस्लिम उदारवादी कहां हैं? जावेद अख्तर, शबाना आजमी और शाहिद सिद्दीकी जैसे कुछ गिने-चुने लोगों को छोड़कर, ऐसे अधिकतर लोगों ने चुप्पी साधी हुई है और उन रूढ़िवादी मुल्लाओं के लिए मैदान खाली रख छोड़ा है, जो कुछ टीवी चैनलों पर साभिप्राय नुमाया होते रहते हैं।

यही वक्त है कि जिन मुस्लिमों का इस विवाद को जारी रखने में कोई भी निहित स्वार्थ नहीं है, ज्यादा नमूदार हों और यदि संभव हो, तो संगठित हों। हिन्दुओं के लिए भी यह सही समय है कि वे कट्टरवादी सीमांत समूहों का मजबूती से खंडन करते हुए, इस प्रक्रिया को सुगम बनाएं। जब हिन्दुओं तथा मुस्लिमों के बीच से विवेकवान लोग साथ आयेंगे, तभी हमें राम मंदिर के मुद्दे का समाधान मिल सकेगा। लगता है कि ऐसा करने की सर्वोत्तम राह यही है कि संवाद की प्रक्रिया उन लोगों से दूर ले जायी जाए, जिनकी प्रासंगिकता सिर्फ इसी में है कि यह विवाद अनसुलझा ही बना रहे। ❑

सर्व सेवा संघ का 87वां अधिवेशन

सर्व सेवा संघ (अ. भा. सर्वोदय मंडल) का 87वां अधिवेशन 12-13 मार्च, 2019 (मंगलवार-बुधवार) को रायपुर (छत्तीसगढ़) में अध्यक्ष श्री महादेव विद्रोही की अध्यक्षता में आयोजित होगा। अधिवेशन 12 मार्च की सुबह 10.30 बजे शुरू होगा और 13 मार्च की शाम 5.00 बजे तक चलेगा। **इस कार्यक्रम में देशभर से सभी गांधी-विचार प्रेमी सादर आमंत्रित हैं।**

तारीख : **12-13 मार्च, 2019 (मंगलवार-बुधवार)**
स्थान : **रामस्वरूपदास निरंजनलाल धर्मशाला, राजीव गांधी मार्ग, (वी आई पी रोड), बेबीलॉन के निकट, रायपुर (छत्तीसगढ़)**
संपर्क : **श्री सियाराम साहु, अध्यक्ष, छत्तीसगढ़ सर्वोदय मंडल मो. : 8827489499**

कैसे पहुंचे : रायपुर, नागपुर-हावड़ा मेन लाइन पर एक महत्त्वपूर्ण स्टेशन है। देश के करीब-करीब सभी महत्त्वपूर्ण स्टेशनों से रायपुर के लिए सीधी गाड़ियां हैं।

रायपुर रेलवे स्टेशन से प्लेटफार्म नं. 1 की ओर से बाहर निकलें। यहां से अधिवेशन स्थल करीब 8 किमी की दूरी पर है। हवाई अड्डा जाने वाली सिटी बसों एवं ऑटोरिक्शा आदि से भी यहां पहुंचा जा सकता है। ऑटोरिक्शा का किराया करीब 110/- रुपये है।

विशेष सूचना : (1) यह अधिवेशन होली के एक सप्ताह पहले हो रहा है, इसलिए गाड़ियों में भीड़ होने की संभावना है। अतः आप अपने पहुंचने एवं वापसी का रेल आरक्षण समय से करा लें ताकि अंतिम समय में परेशानी न हो, रेल आरक्षण 4 महीने पहले शुरू होता है। **(2)** किसी भी सहायता के लिए रायपुर रेलवे स्टेशन के प्लेटफार्म नं. एक (1) पर अवस्थित सर्वोदय बुक स्टाल से संपर्क किया जा सकता है। **–शेख हुसैन,** महामंत्री

रिजर्व बैंक को समझना चाहिए कि भारत अमेरिका नहीं है

❑ कमल मोरारका

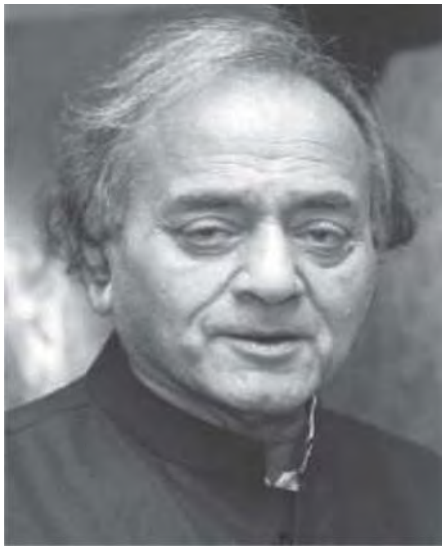

सरकार और रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया (आरबीआई) का आपसी मतभेद दुःखद है। इस सरकार ने कई मामलों में परिपक्वता से काम नहीं लिया। आरबीआई एक स्वायत्त संस्था है। उसका काम है देश की मुद्रा स्फीति और मुद्रा पर नजर तथा सरकारी एवं निजी बैंकों पर नियंत्रण रखना। शुरू में जब अर्थ व्यवस्था छोटी थी, तो आरबीआई का गवर्नर महत्त्वपूर्ण होता था। वो वित्त मंत्री से समन्वय बनाकर काम करता था। 1991 में उदारीकरण के बाद बाजार का महत्त्व बढ़ गया, जीडीपी बढ़ गयी, वित्तीय आंकड़े बढ़ गये। ऐसे में यह वित्त मंत्री और रिजर्व बैंक के गवर्नर के व्यक्तित्व पर ही है कि वो इन मामलों से कैसे निपटते हैं। इनसे पहले पी. चिदंबरम वित्त मंत्री थे। वे थोड़ा कड़क मिजाज आदमी थे। कुछ लोग उन्हें स्वाभिमानी भी कहते हैं। रिजर्व बैंक के तत्कालीन गवर्नर सुब्बाराव साहब के साथ उनके रिश्ते अच्छे नहीं थे। हालांकि रघुराम राजन के साथ उनका रिश्ता ठीक रहा।

जब मौजूदा सरकार सत्ता में आयी और अरुण जेटली वित्त मंत्री बने, तो रघुराम राजन गवर्नर थे। रघुराम राजन शिकागो कॉनसेंसस के आदमी हैं। उनकी सोच अलग है। मैं नहीं समझता कि अमेरिका में पढ़ा हुआ अर्थशास्त्री यहां के अर्थशास्त्रियों से ज्यादा होशियार होगा। हिन्दुस्तान की आबादी सवा सौ करोड़ है, जबकि अमेरिका की आबादी केवल 20-30 करोड़ है, वो हमें क्या बताएगा। अमेरिका बहुत अमीर है, लेकिन वो अपना पैसा हमें तो देता नहीं, फिर वो हमें क्या बतएगा कि क्या करना है। अगर अमेरिकी सोच का कोई आदमी आएगा, तो वो अमेरिका के हित के लिए ही काम करेगा। उदाहरण के लिए, आयात-निर्यात नीति को लेते हैं। हर देश चाहता है कि उसका माल बिके। जाहिर है, अमेरिका भी चाहता है कि उसका ज्यादा से ज्यादा माल भारत में बिके। आर्म्स के क्षेत्र में चाहे वो हथियार हों या जहाज, उनमें तो उनकी बढ़त है, क्योंकि उनकी टेक्नोलॉजी अच्छी है। वो चाहते हैं कि जो छोटी चीजें यहां बन सकती है, वो भी भारत वहीं से मंगाए। अब अमेरिका की प्रतिस्पर्धा में चीन आ गया। चीन ने भारतीय बाजार को मोबाइल से भर दिया। हम मोबाइल बना सकते थे, लेकिन इस सरकार को चीन और जापान से बहुत लगाव है। अमेरिका से सरकार डरती है। दरअसल, हिन्दुस्तान का नेतृत्व वही कर सकता है, जिसकी रीढ़ की हड्डी में दम हो। यदि ट्रम्प साहब के टेलिफोन कॉल से आप कुर्सी से उठ जायेंगे, तो आप देश का नेतृत्व नहीं कर सकते हैं। गणतंत्र दिवस के परेड के अवसर पर आप ट्रम्प साहब को बुलाना चाह रहे थे, लेकिन उन्होंने इसलिए ना कर दिया, क्योंकि वो समझते हैं कि मोदी जी अस्त होने वाला सितारा हैं, राइजिंग स्टार नहीं हैं। अपना नाम उनके साथ क्यों जोड़ें। जो नया प्रधानमंत्री आयेगा, उससे बात करेंगे। हर देश अपना स्वार्थ, अपना इंट्रेस्ट देखता है और यह गलत नहीं है।

हमारा आत्मविश्वास और आत्मसम्मान इतना नीचे गिर गया है कि अमेरिका यदि वीजा पर रोक लगाता है, तो हम आपत्ति जताते हैं। उनका देश है, वो फैसला करेंगे कि किस तरह के लोग वहां जायें। अब सवाल यह उठता है कि आप अमेरिका क्यों जाना चाहते हैं? क्योंकि आपने युवाओं के मन में ऐसी भावना पैदा कर दी है कि अमेरिका जाने से ही उनकी भलाई होगी। मोदी जी को एनआरआई से बहुत लगाव है। अक्टूबर महीने में एनआरआई और फॉरेन पोर्टीलियो इन्वेस्टर्स ने भारत से पांच बिलियन डॉलर वापस ले लिया, क्योंकि पैसे की तो एक नियति होती है। जहां पैसा बढ़ेगा, वहीं पैसा जायेगा। भारत में बाजार मंदी की ओर चला गया, तो उन्होंने अपना पैसा वापस ले लिया। यहां कोई भलाई का काम करने नहीं आया है।

अब असली सवाल पर वापस आते हैं। रिजर्व बैंक और सरकार में क्या मतभेद हैं? सरकार ने रिजर्व बैंक के बोर्ड में एस गुरुमूर्ति को मनोनीत किया। वे एक चार्टर्ड एकाउंटेंट हैं, बुद्धिजीवी हैं, आरएसएस के करीबी हैं और मेरे भी परिचित हैं। वे बोर्ड में कहते हैं कि पैसे की कमी हो गयी है, तो कम से कम जो माइक्रो स्मॉल एंड मिडियम एंटरप्राइजेज (एमएसएमई) हैं उन्हें कर्ज देने में थोड़ी ढील दीजिए। आरबीआई के गवर्नर और उनके डिप्टी गवर्नर विरल आचार्य मानते नहीं हैं। वे तो अमेरिका की बंसी बजा रहे हैं, वे चाहते हैं कि मध्यम और लघु क्षेत्र के उद्यम बंद हो जायें। केवल 20-30 बड़े घराने बने रहें, अमेरिका के साथ उनकी सांठ-गांठ रहे और अमेरिका की दुकान चलती रहे। गुरुमूर्ति स्वदेशी जागरण मंच के कनविनर थे। उनका मानना है (और सही मानना है) कि लाखों करोड़ों उद्यमियों के बल पर ही हिन्दुस्तान ऊपर उठ सकता है। किसान तो हैं ही। किसान जो फसल उगाता है, उसकी तरक्की तब होती है, जब गांव में आप छोटी इकाई लगाते हैं। गुरुमूर्ति उस ख्याल के हैं। वे थोड़ा-सा जोर लगाते हैं, लेकिन ये नहीं मानते। अरुण जेटली में वो ताकत नहीं है,

कि वे रिजर्व बैंक के गवर्नर को समझा सकें।

सरकार बहरहाल सरकार होती है। चाहे कोई भी सरकर हो। मैं भाजपा की नीतियों के पक्ष में नहीं हूं, लेकिन सरकार के अधिकार के पक्ष में हूं। रिजर्व बैंक के गवर्नर कौन होते हैं, उन्हें चलता करिए। विरल आचार्य को चलता करिए। हमें देश बचाना है या उनकी नौकरी बचानी है? वित्त मंत्री उन्हें साफ-साफ कह दें कि वे मेरी बात मानें या इस्तीफा दे दें। दो मिनट में बात खत्म। फिलहाल आरबीआई एक्ट का सेक्शन-7 चर्चा में है। मोदी जी और राहुल गांधी के बीच खूब तू-तू, मैं-मैं चल रही है। राहुल गांधी बोलते हैं कि सरकार सेक्शन-7 का उपयोग कर रही है। सरकार ने सीबीआई को बर्बाद कर दिया और आरबीआई खुद देश को बर्बाद कर रहा है। दरअसल, सेक्शन-7 लागू करके सरकार आरबीआई को बर्बाद नहीं कर रही है, बल्कि गवर्नर और डिप्टी गवर्नर को नहीं हटाकर बर्बाद कर रही है। ये किसके हित में काम कर रहे हैं?

ईज़ ऑफ डूईंग बिजनेस यानि व्यापार करने की आसानी का एक स्लोगन निकला। इस रैंकिंग में हम 130वें नंबर पर थे, फिर 100वें पर आए और अब 77वें स्थान पर आ गये हैं। इस रैंकिंग का फैसला अमेरिका करता है। इसकी हकीकत यह है कि यदि आप सारी इंडस्ट्रीज को बंद कर दीजिए, तो अमेरिका आपको पहले स्थान पर खड़ा कर देगा। क्योंकि अमेरिका में बाजार डूईंग बिजनेस एंड क्लोजिंग बिजनेस के सिद्धांत पर चलता है। जो बिजनेस नहीं चले, उसे बंद कर दो। ऐसा भारत में नहीं होता है। यहां ऐसा नहीं होता है कि बूढ़े मां-बाप कमाते नहीं हैं, तो उनकी गर्दन काट दो। यह परंपरा वहां है कि बूढ़े मां-बाप को ओल्ड एज होम में डाल देते हैं। हमारी परंपरा सनातन धर्म की परंपरा है। हम चंद सिक्कों के लिए परिवार या मां-बाप को नहीं बेचते, या गदहे को बाप नहीं बना लेते हैं। मैं हिन्दुत्व के पक्ष में नहीं हूं, लेकिन मुझे उम्मीद थी कि कम से कम इस संस्कार के लोग पावर में आयेंगे, तो कुछ न कुछ इस तरह हो जायेंगे। ये तो उल्टी दिशा में ही जा रहे हैं।

मोदी जी कहते थे कि हमें कांग्रेस मुक्त भारत चाहिए। बाद में उन्होंने खुलासा किया कि कांग्रेस मुक्त भारत से मेरा मतलब कांग्रेस पार्टी से नहीं है, बल्कि हमें उस कांग्रेसी कल्चर से मुक्ति चाहिए, जहां हर काम पैसे के जोर पर होता है, चुनाव पैसे के जोर पर होता है। लेकिन इन चार साल में ये कांग्रेस के आगे चले गये। कांग्रेस ने इतना पैसा कभी खर्च ही नहीं किया, जितना भाजपा ने किया। अमित शाह ने जितना सत्ता का दुरुपयोग किया है, किसी ने इतिहास में नहीं किया है। जैसा कि मैंने पहले भी कहा है कि भाजपा ने साढ़े चार साल में यह सिद्ध कर दिया है कि वे देश चलाने के काबिल नहीं हैं। वे मुनसीपालटी, पंचायत स्तर की ही बात कर सकते हैं। देश का अर्थशास्त्र, विदेश नीति, सुरक्षा, जैसे विषय उनकी समझ से बाहर हैं। मोदी जी भाषण देकर इसका मेकअप नहीं कर सकते हैं। चंद्रशेखर जी हमारे नेता थे, वे हमेशा कहते थे कि चाहे जितना भी अच्छा भाषण दे दो, भाषण देने से एक किलो गेहूं, दो किलो नहीं बनेगा, वो एक किलो ही रहेगा। मोदी जी समझते हैं हर चीज का विकल्प भाषण है। नेता जी बोस का नारा था, तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा। मैंने ट्वीटर पर एक कार्टून देखा, जिसमें मोदी जी का मजाक उड़ाते हुए कहा गया था कि तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें भाषण दूंगा। अब सारा मामला भाषण पर आ गया है कि कौन अच्छा भाषण लिखता है, कौन उसे मोदी जी की तरह हाथ पांव हिलाकर जोरदार ढंग से बोलता है। इसका लाभ एक बार 2014 में मिल चुका है। काठ की हांडी बार-बार नहीं चढ़ती है। यह 2019 में दोबारा नहीं हो सकता है। आज भी यदि मोदी जी ठोस बात करते हैं और मान लेते हैं कि मुझसे यहां-यहां गलती हुई है, जिसे मैं ठीक करूंगा, तो अब भी चुनाव में उनके लिए नतीजा खराब नहीं होगा, लेकिन ऐसी विनम्रता तो उनमें है ही नहीं। ❑

भीड़ की हिंसा और गांधी

❑ **किशनगिरि गोस्वामी**

आज देश की अन्य चिन्ताओं को एक किनारे रख दें, तो सबसे बड़ी चिन्ता यह है कि हमारा समाज भीड़ में बदलता जा रहा है और भीड़ अपने को हिंसक होने से नहीं बचा पा रही है। देश के मौजूदा हालात में इस बात को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता कि सन् 2014 के बाद से न सिर्फ राजनीतिक सूर्य **दक्षिणायन** हुआ है बल्कि प्रबुद्ध सामाजिक व्यवहार में भी बड़ा बदलाव आया है। **गौरक्षा** से लेकर...**बच्चा चोरी** तक के नाम पर किसी को सरेआम पीट-पीट कर मार डालने की **हिंसक आतुरता** के बीज कहीं न कहीं इस बदलाव के बीच में ही छिपे हैं। ये बीज देश की पारंपरिक सामाजिकता की फुलवारी को कैक्टस के जंगल में न बदल दे—इसके समाधान और सूत्र के लिए अहिंसक गांधी से बड़ा कोई विकल्प शायद ही हो।

गांधी अपने साथ और अपने नाम पर हुई '**भीड़ की हिंसा**' के साक्षी खुद भी रहे हैं। लिहाजा इस समस्या पर उनको गौर से सुनने-समझने की जरूरत है। गांधी के जीवन में कम से कम नौ ऐसी घटनाएं घटीं—जब वे भीड़ के हिंसक पागलपन के सामने खुद खड़े थे। 13 जनवरी 1897 को पहली बार दक्षिण अफ्रीका में हिंसक भीड़ उन्हें मार देने पर उतारू थी। यह सिलसिला 30 जनवरी 1948 तक जारी रहा। गांधी के संयम की परीक्षा बार-बार हुई, पर वे आखिर तक हिंसा के खिलाफ किसी तरह के आवेग या उग्रता से बचते रहे।

8 सितंबर, 1920 को गांधीजी ने **'यंग इंडिया'** में **'लोकशाही बनाम भीड़शाही'** शीर्षक लेख में लिखा : ''आज भारत बड़ी तेजी से भीड़शाही की अवस्था में गुजर रहा है। दुर्भाग्यवश ऐसा भी हो सकता है कि इस अवस्था से हमें बहुत धीरे-धीरे छुटकारा मिले, लेकिन बुद्धिमानी इसी में है कि हम हर संभव उपाय का सहारा लेकर इस अवस्था से जल्द से जल्द छुटकारा पा लें।''

इसी लेख में वे आगे कहते हैं : ''मेरे संतोष का कारण यह है कि भीड़ को प्रशिक्षित करने से ज्यादा आसान काम और कोई नहीं है। कारण सिर्फ इतना ही है कि भीड़ विचारशील नहीं होती। वह तो आवेश के अतिरेक में कोई काम कर गुजरती है और जल्दी ही पश्चात्ताप भी करने लगती है। अलबत्ता हमारी सुसंगठित सरकार पश्चात्ताप नहीं करती।''

यहां गांधी दो बातों की ओर साफ इशारा कर रहे हैं—एक तो यह कि हिंसा भीड़ का **चरित्र नहीं** बल्कि उसका **प्रशिक्षित आचरण** है। दूसरा, वे सरकार की **संवेदनहीनता** को लक्ष्य करते हुए उसे इस पागल हिंसा का कसूरवाद मानते हैं। आज देश के मौजूदा हालात पर भी गांधीजी की ये बातें सही उतरती हैं। एक अफवाह...एक दुष्प्रचार—अगर अचानक देश के किसी क्षेत्र में...समाज में...भीड़ बनने और फिर हिंसक सलूक के लिए उकसाता है, तो इसके पीछे की मानसिकता कहीं न कहीं **सुनियोजित** है, **सुचिन्तित** है। खासतौर पर सियासी जमातों से लेकर सत्ता में विराजमान माननीयों को इस बात की चिन्ता नहीं है कि उतनी जवाबदेही सामाजिक व्यवहार-संस्कार की तरलता को किसी तरह की कट्टरता और नफरत से भरे मंसूबों से दूर रखने की भी है—तो हश्र वही होता है, जो आज देश के सामने है।

गांधीजी की इस उम्मीद और नसीहत को रेखांकित भर कर देने से बात नहीं बनेगी, क्योंकि एक बड़ा संकट देश के **राजनीतिक - सामाजिक नेतृत्व की स्वीकृति, उसके कद** एवं **आचरण** को लेकर पहले से ही है। समाज का आंतरिक अंतर्विरोध अगर किसी राजनीतिक ध्रुवीकरण की जमीन तैयार करता है और किसी जाति-धर्म के लिए घृणा देश के नागरिकों के लिए अगर उनकी सियासी समझ की टेक बनती है, तो फिर दोष और आरोप के घेरे में सामने वाला ही नहीं, हम भी साथ खड़े हैं। कहना मुश्किल है कि इस **अंतर्विरोध** और **दुराग्रह** से बचने की तैयारी भारतीय लोक-मानस में कितनी है? गांधी और उनकी अहिंसा देशवासियों से इस तैयारी में जुटने के **आपात विवेक** की उम्मीद करती है। ❑

बापू कुटी

महात्मा गांधी ने 1936 में मीरा बेन की पहल व जमनालाल बजाज के सहयोग से सेवाग्राम (वर्धा) में अपना आश्रम बनाया। यहां मिट्टी की दीवार और खपरैल की छत से बनी कुटी में रहकर गांधीजी ने अपने नैतिक बल से अंग्रेजी साम्राज्य के बंकिघम पैलेस को चुनौती दी। उस समय यह कुटी मात्र 100 रुपये में बनी थी। गांधीजी की सख्त हिदायत थी कि इसमें स्थानीय सामग्री ही इस्तेमाल हो। लकड़ी गढ़ी न जाए और तय कीमत से एक रुपये भी ज्यादा न लगे।

गांधीजी की जन्मशती पर गांधीजनों ने जब इस कुटी को संरक्षित करने के लिए देश-दुनिया के तीन बड़े वास्तुविदों को बुलाया तो उनकी प्रतिक्रिया अद्‌भुत थी।

अमरीकी वास्तुविद जोसेफ ऐलन स्टीन, जिन्होंने दिल्ली के लोदी इस्टेट और इंडिया इंटरनेशनल को डिजाइन किया था–कुटी को देखकर सारे समय रोते रहे। स्टीन का कहना था कि यह कुटी हमसे कई सवाल पूछती है, जिसका हमारे पास कोई जवाब नहीं है।

ऐसी ही प्रतिक्रिया गुजराती वास्तुविद बालकृष्ण डोसी और मराठी वास्तुविद अच्युत कानविदे की भी थी। उनका कहना था कि यह कुटी हमें बताती है कि कम साधन में सादगी के साथ बनाया जाने वाला गरीब का घर कितना सुंदर हो सकता है।

सेवाग्राम की उस कुटी ने आज भी प्रश्न पूछना बंद नहीं की है। वहां लिखी गयी 'पागल दौड़' जैसी सूक्ति पूछती है कि बड़ी-बड़ी इमारतें खड़ी करने के बाद भी हमारी सभ्यता की नैतिक ऊंचाई बढ़ क्यों नहीं रही है?

बा-बापू : 150वीं जयंती पर विशेष

'बा' भारत वापसी

❑ गिरिराज किशोर

गांधीजी को लेकर एक बड़ा और चर्चित उपन्यास प्रस्तुत कर चुके श्री गिरिराज किशोर ने अब बा पर कलम उठायी है। बा पर कुछ भी लिखना बहुत कठिन था। नहीं के बराबर जानकारियां। 'पहला गिरमिटिया' की सामग्री जुटाने में उन्हें कोई दो हजार पुस्तकों से मदद मिली थी। और 'बा' उपन्यास लिखते समय मुश्किल से दो पुस्तकें सामने थीं। वे उन सब लोगों से मिले, जिन्हें कस्तूरबा के बारे में थोड़ी-सी भी जानकारी थी और उन जगहों पर गये, जहां बा ने थोड़ा या बहुत समय बिताया था। इस तरह बनी यह कथा, यह इतिहास बा के अलावा खुद बापू के दो और रूपों को भी सामने रखता है–पति और पिता का रूप। प्रस्तुत है 'बा' का एक अंश, जो बा-बापू : 150 के अवसर पर क्रमशः प्रकाशित हो रहे हैं। –सं.

पूरी गर्मियों बापू, वकील और दूसरे स्वयं-सेवक चंपारण से जुड़े कानूनी मुद्दों से जूझते रहते थे। कस्तूरबा, देवदास अन्य स्वयंसेवकों के साथ, जिले की स्वास्थ्य और सामाजिक समस्याओं से जुड़ गये थे। फीनिक्स के अनेक साथियों से, जो भारत में आ गये थे, जुड़ना बा को अच्छा लग रहा था। उसमें छगनलाल का बेटा प्रभुदास और हेनरी पोलक शामिल थे। उन लोगों ने कई सप्ताह भारत में गुजारे। पोलक अफ्रीका से बापू को वहां हो रहे परिवर्तनों के बारे में

रिपोर्ट दिखाने आये थे। वे भला भारत में हो रहे पहले जन आंदोलन से अलग कैसे रह सकते थे। आरंभ में भाषा संबंधी समस्याएं आयीं, उनका समाधान निकाल लिया गया। एक दवाखाना पूना से आये डॉक्टर की देखरेख में चालू कर दिया गया था। गांव वालों और स्वयंसेवकों की सहायता से घास-फूस की छत डालकर स्कूल बना दिया गया था। देवदास प्रभुदास, तथा स्वयं सेवक स्कूल में आने वाले बच्चों को पढ़ाने लगे थे। कुछ ही दिनों में बदलाव नजर आने लगा। बड़ी उम्र के लोग, जो अंगूठा लगाते थे, हस्ताक्षर करने में गर्व महसूस करने लगे।

कस्तूरबा जिला स्तर पर सफाई का काम देख रही थी। गांव के सीधे-साधे लोग कहीं भी थूक देते थे, जहां मौका लगता था पेशाब कर देते थे। जगहों को सुविधा के लिए गंदा कर देते थे। वे इतना भी नहीं जानते थे कि कचरा फैलाना स्वास्थ्य के लिए कितना खतरनाक है। कस्तूरबा अपनी टोली के साथ सिखा सकती है। स्थानीय महिलाओं की टोलियां बनाकर गांव की सफाई कराती थी। पहले उन्हें झाड़ू बनाना सिखाया जाता था। हर महिला को एक झाड़ू दी जाती थी। सबसे पहले वह अपना घर साफ करती थी। उसके बाद सब महिलाएं और बच्चे मिलकर गांव के मैदान और गलियां साफ करते थे। बाकी मर्द और औरतें कुओं की सफाई करना और गांव की नालियों की निकासी का दांचा बनाना सीखते थे। औरतों और मर्दों के लिए अलग-अलग शुचिता की कक्षाएं चलायी जाती थीं।

जैसे-जैसे आंदोलन तेज हुआ गोरे जमींदारों की नजरें टेढ़ी होने लगीं। स्थानीय समाचार अपने संपादकियों और समाचारों में लिखने लगे कि आंदोलनकारी कैसे अशांति फैला रहे हैं। सफाई करना, बच्चों और बड़ों को पढ़ाना आदि जनसेवा का कार्य उन्हें अशांति फैलाने का माध्यम नजर आ रहा था। आंदोलन से जुड़े वकीलों को, जो किसान अपने लिखित बयान दे रहे थे, उन्हें धमकियां मिलने लगी थीं। बांसों और फूस से बने स्कूल भवन को, जिसमें कस्तूरबा स्वयं रहती थी, जला दिया गया। बा बाल-बाल बच गयी। किसानों ने स्वयंसेवकों की सहायता से, उसकी जगह ईंट गारे का कच्चा स्कूल भवन खड़ा कर दिया।

एक दिन बापू व्यक्तिगत शुचिता पर बोल रहे थे। उन्होंने कहा, हर किसी को नहाकर रोज धुले हुए कपड़े पहनने चाहिए। उन्होंने गांव की औरतों को गंदे कपड़े पहने देखा था। अन्य गांव की तरह उस गांव में भी नहाने और शौच की अलग से या सामूहिक प्रबंध नहीं था। बापू की टिप्पणी लोगों को खटकी। बाद में महिलाओं ने बा को पकड़ा, 'महात्मा जी ने हमें हर दिन नहाने और धुले कपड़े बदलने की सलाह दी है, हम कैसे करें? जो कपड़े हम पहने हैं, वही कपड़े हमारे पास हैं।'

सच्चाई समझाने के लिए एक महिला ने बा से उसकी झोपड़ी में चलने की जिद की। बा ने जाकर देखा तो चकित रह गयी। सास और बहू दोनों के पास एक ही धोती थी। जो बाहर जाता था वह धोती पहन लेता था। बा को यह जीवन के सबसे कटु सत्य की तरह लगा। बा भी तीन जोड़ी कपड़े रखती थी। एक धोया दूसरा पहना, तीसरा कहीं आने-जाने के लिए। पर यह स्थिति तो बड़ी चिन्ताजनक और अमानवीय थी। वे लोग कितने सप्ताह से साथ काम कर रहे थे पर किसी ने सोचा भी न था कि ये लोग कितनी शर्मनाक गरीबी में जी रहे हैं। बा के पास उन्हें तत्काल देने के लिए कुछ नहीं था।

रूँधे गले से बा ने कहा, 'कुछ सोचने के लिए समय दें। इस शर्मनाक स्थिति से उबरने का कोई रास्ता निकलेगा।'

बा ने बापू को बताया तो बापू को लगा सत्य जिन्दगी से ज्यादा कड़वा है। हम बिना जाने, कुछ भी कहकर, अपने को झूठा साबित कर लेते हैं। दयनीयता और मजबूरी की सीमा नहीं होती। उन दोनों के सामने यह चुनौती उन मजबूर महिलाओं के सम्मान से जुड़ गयी थी। दूसरी तरफ बा उन महिलाओं और बच्चों को वह नदी किनारे ले गयी। सड़ी गर्मी पड़ रही थी। गांव के अधिकतर लोग शहर में काम करने नहीं गये थे, अपने आसपास के खेतों में काम कर रहे थे। बा इस बात से खुश थी कि वे महिलाएं कितनी सरल और सीधी हैं। उन्होंने कहा, क्यों न हम सब मिलकर एक खेल खेलें। बात महिलाओं को अटपटी लगी लेकिन बच्चे खुश हो गये। बा ने महिलाओं से अपने-अपने बच्चों के कपड़े उतारने के लिए कहा। महिलाओं को दो टोलियों में बांट दिया। एक टोली से कहा, वे बच्चों के कपड़े इकट्ठे करके नदी में धो डालें। दूसरी टोली से कहा, वे सब बच्चों को कम गहरे पानी में ले जायें और नहला लायें। बच्चे पानी में उतरकर मस्त हो गये, आपस में एक दूसरे पर पानी उछालने लगे। छोटे बच्चों को महिलाएं उनका हाथ पकड़कर नहलाती रहीं। जब तक वे नहाकर आये तेज धूप में कपड़े सूख गये थे। बच्चे धुले हुए कपड़े पहनकर गांव में खेलने चले गये। ऐसा लगा कि गांव एकाएक रोशन हो उठा है। खेलने भेजते हुए बच्चों से बा ने कहा, 'तुम्हारी माओं ने मेहनत से कपड़े धोए हैं, इन्हें गंदे मत करना।'

उसके बाद महिलाओं की बारी आयी। उनको फिर दो टोलियों में बांट दिया गया। कस्तूरबा के नेतृत्व में पहले एक टोली पानी में उतरी। पानी गर्दन तक था। औरतों ने पानी में खड़े-खड़े कपड़े उतारे, और संभलकर कपड़े धोने लगीं। भीगे कपड़े लपेटकर जल्दी वहां लौट आयीं जहां दूसरी टोली की महिलाएं हाथ में हाथ डालकर पर्दा बनी खड़ी थीं। उन्होंने धूप में खड़े होकर कपड़े सुखाए। इस बीच वे भी पानी में कपड़े धो रहीं महिलाओं की पर्दादारी करती रहीं। जब सब महिलाएं नहा-धोकर चलीं तो सब तनावमुक्त और प्रसन्न थीं। त्वचा और बालों में चमक थी। बा जब से आयी थी उन सबको इतना प्रसन्न पहले नहीं देखा था। बा भी उनकी प्रसन्नता से अंदर ही अंदर प्रसन्न थी। आंखों में आशा की चमक थी।

बा ने दक्षिण अफ्रीका से लौटने के बाद भारत के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक यात्राएं की थीं। पहली बार अपने देश की विराटता का अंदाजा लगा था। उसकी भवरों को देखा था। बा को इस अनुभव ने उदास कर दिया था। एक ओर लोग बिना वस्त्र और भोजन के जी रहे थे। दूसरी तरफ लोग गरीबी और उसके दुखों से अनभिज्ञ थे। उनका अर्थ तक मालूम नहीं था। अधिकतर जनमानस को गरीबी ने सूखे पत्तों की तरह धरती पर बिछाया हुआ था। बापू की तरह बा भी चाहती थी कि वह उनके उन दुखों के निवारण में उनकी सहायक बने। उन्हें उससे उबारे। लेकिन उनके या किसी के भी बस में क्या था? देश इतना विशाल, समस्याएं ढूह भर। मरने-खटने वाले इतने, काम करने वाले मुट्ठी भर। चंपारण ने उसे सिखाया अभी संभावना है। संभावना ही आशा की जीवन रेखा है। एक जिला, एक ग्राम, एक सुबह, एक शाम और एक रात, सुख-दुख की एक ईकाई बन जाती है, हम उसी के अंग हैं।

हरिलाल कलकत्ता में आर्थिक तंगी से जूझ रहा था। उसने मणिलाल को लिखा, मैं परेशानी में हूं, तुम ज्यादा से ज्यादा जो कुछ भेज सको, भेज दो। हरिलाल धर्म संकट में फंस गया। बापू और हरिलाल के संबंध तनावपूर्ण थे। आश्रमवासियों को बापू के स्पष्ट आदेश थे कि हरिलाल को कोई भी संवासी आर्थिक सहायता नहीं देगा। मणिलाल ने दक्षिण अफ्रीका में तनख्वाह से बचाए रुपयों में से कुछ रुपये मनीआर्डर कर दिये। उसे ध्यान नहीं रहा कि रसीद पर हरिलाल के हस्ताक्षर होंगे। अगर बापू की नजर पड़ गयी तो क्या होगा। जब डाक आयी, छंटाई के बाद रसीद बापू को ले जाकर दे दी गयी। उन्होंने मणिलाल को तलब किया। पूछा, तुमने मेरे आदेशों का उल्लंघन करके हरिलाल को आश्रम के धन में से पैसे भेजे। मणिलाल ने स्वीकार कर लिया। मणिलाल अगर कहता कि वह मेरी कमाई का पैसा है तो आश्रम के नियम का उल्लंघन होता। आश्रम का जीवन गरीबी का जीवन था। कोई भी सदस्य किसी भी रूप में व्यक्तिगत धन रखने का अधिकारी नहीं था।

बापू ने कहा, 'तुम्हें प्रायश्चित करना होगा।'

उसने कहा, 'मैंने सोचा भाई का परिवार भूखा होगा।'

बापू ने पूछा, 'क्या तुम्हारे भेजे दस रुपये से उनकी भूख सदा के लिए समाप्त हो जायेगी, भूख को शांत करने के लिए सतत् मेहनत की दरकार होती है। जो मेहनत नहीं करता भूख उसे और उसके परिवार को नहीं पहचानती।'

बापू ने फैसला सुनाया, 'तुम्हारी इस अवज्ञा के लिए मैं सात दिन का उपवास करूंगा।' मणिलाल रात-भर अनुनय-विनय करता रहा कि जिसने अपराध किया उसे दंड मिलना चाहिए। सवेरे फैसला बदल दिया।

'ठीक है, प्रायश्चित उसे ही करना होगा, जिसने अपराध किया है।' और मणिलाल को मद्रास का टिकट पकड़ा दिया।

'तुम्हें मद्रास जाना होगा, एक साल अपनी पहचान छुपाकर रहना होगा। जो कमाओगे उसी में गुजारा करना होगा। तुम यहां से एक पैसा साथ नहीं ले जाओगे।'

मणिलाल बिना चूं-चपड़ के मद्रास रवाना हो गया। वहां जाकर कई बार उसे मरीना बीच के रेत पर सोना पड़ा, मूंगफली खाकर पेट भरना पड़ा। कभी किसी से भूलकर भी नहीं कहा कि वह मोहनदास करमचंद गांधी का बेटा है। *...क्रमशः अगले अंक में*

अनुपमा तिवारी की तीन कविताएं

(एक)

उस वक्त सिर्फ बेशरम हो कर
जीया जा सकता है...
जब नवरात्रों में एक ओर
बालिकाएं पूजी जा रही हों
और
दूसरी तरफ नन्हीं बालिकाएं
देह दुष्कर्म की शिकार
हो रही हों
उस वक्त सिर्फ बेशरम होकर
जीया जा सकता है...
जब पैदल चलकर
देश भर से
लोग गंगा जल लाकर
अपने घर को
पवित्र कर रहे हों
और
पवित्र होने गयी
एक औरत को
खींचा जा रहा हो
उस वक्त सिर्फ बेशरम होकर
जीया जा सकता है...
जब चार पराठे
तुम अपने बैग में रखकर
यात्रा को निकले हो
और
तुम्हारे घर में
इस्तेमाल करने के लिए
पांच बाथरूम हों
और
कच्ची बस्ती या गांव के
हैंडपम्प पर
कुछ औरतें
झुंड में
लूगड़ी से आड़ बनाकर
लाज बचाने की
जुगत में लगी हों
उस वक्त सिर्फ बेशरम होकर
जीया जा सकता है...
जब तुम पक्के घर की
छत के नीचे गद्दे पर
नरम रजाई में दुबके हो
और
कड़कती ठंड में
कोई फ्लाई ओवर के नीचे
फुटपाथ पर खुले आसमान में
सिर अपने पेट में छुपाए
दुहरा हुआ जा रहा हो
उस वक्त सिर्फ बेशरम होकर
जीया जा सकता है...
जब तुम होटल में खाने को
मुंह मांगी चीजें
ऑर्डर दे कर खाओ
और
दुनिया भर में तीन में से
एक आदमी भूखा सोता हो
उस वक्त सिर्फ बेशरम होकर
जीया जा सकता है...
जब कभी तुम फ्लाइट पकड़ने
गाड़ी से जा रहे हो
और
पास में ही कोई
भरी धूप में लोडिंग रिक्शे को
गले में टायर डालकर
खींचता रिक्शा चालक
चल रहा हो
उस वक्त सिर्फ बेशरम होकर
जीया जा सकता है...

(दो)

मुझे पेड़ों से प्यार करते हुए,
एक दिन पेड़ हो जाना है
मुझे नदी से प्यार करते हुए,
एक दिन नदी हो जाना है
मुझे चिड़िया से प्यार करते हुए,
एक दिन चिड़िया हो जाना है
और मनुष्य से प्यार करते हुए
एक दिन मनुष्य हो जाना है
मुझे इस जीवन में अभी
बहुत कुछ हो जाना है...

(तीन)

जीरो से सौ तक रेंज होती है
रिश्तों की,
प्यार की,
भेदभावों की,
इन सबमें नहीं होती
स्पष्ट रेखा कोई
इनमें होता है ओवेरलेप-सा
एक से दो के बीच।
इसलिए तुम क्लेम नहीं कर पाते हो
असलियत को कभी-कभी नहीं,
बहुत बार।
जीवन गणित नहीं होता
एक और दो के बीच होते हैं
बहुत से धागों के रेशे
जिन्हें तुम पकड़ नहीं पाते हो
पर वो होते हैं...। ❑

VSI-(E) 04 For the Year - 2018 to 2020 सर्वोदय जगत : 1-15 जनवरी 2019 Regd.No. R.N.I.35495/78

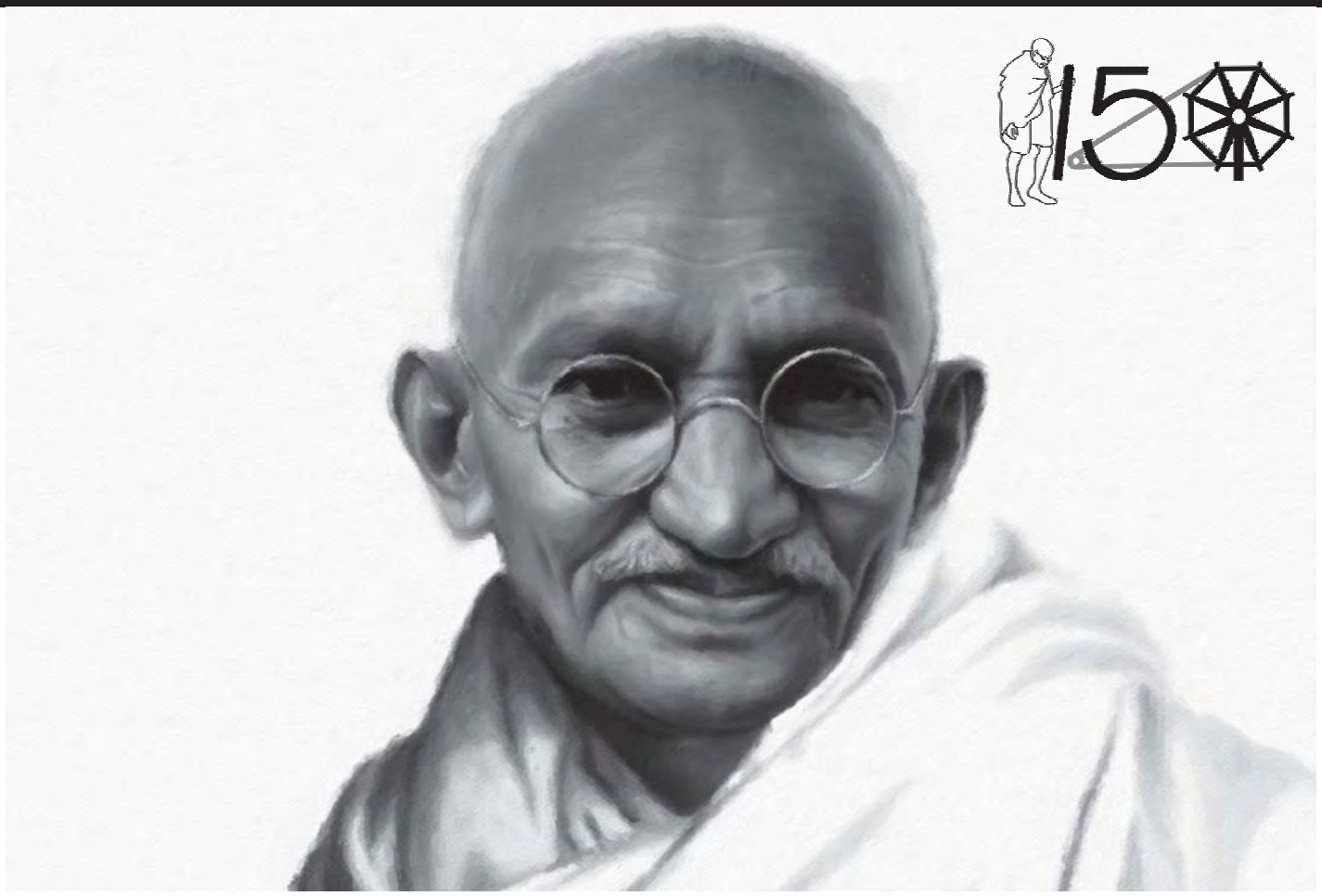

अगर कभी देश को आजादी मिली तो तू मेरे साथ नहीं होगी...मैं अकेला हूंगा। तू ही समझती थी आजादी का मतलब मेरे लिया क्या है। पता नहीं वह आजादी कितनी अधूरी या पूरी होगी? कितनों ने इस आजादी के लिए प्राण गंवाए... सबके लिए आजादी की अलग-अलग परिकल्पना रही होगी...उसे पाने की राह भी अलग होगी। तूने मेरे रास्ते को चुना और कंधे से कंधे मिलाकर चली, और चलाया भी।

गांधी

2019

January

S	M	T	W	T	F	S
		1	2	3	4	5
6	7	8	9	10	11	12
13	14	15	16	17	18	19
20	21	22	23	24	25	26
27	28	29	30	31		

February

S	M	T	W	T	F	S
					1	2
3	4	5	6	7	8	9
10	11	12	13	14	15	16
17	18	19	20	21	22	23
24	25	26	27	28		

March

S	M	T	W	T	F	S
					1	2
3	4	5	6	7	8	9
10	11	12	13	14	15	16
17	18	19	20	21	22	23
24	25	26	27	28	29	30
31						

April

S	M	T	W	T	F	S
	1	2	3	4	5	6
7	8	9	10	11	12	13
14	15	16	17	18	19	20
21	22	23	24	25	26	27
28	29	30				

May

S	M	T	W	T	F	S
			1	2	3	4
5	6	7	8	9	10	11
12	13	14	15	16	17	18
19	20	21	22	23	24	25
26	27	28	29	30	31	

June

S	M	T	W	T	F	S
						1
2	3	4	5	6	7	8
9	10	11	12	13	14	15
16	17	18	19	20	21	22
23	24	25	26	27	28	29
30						

July

S	M	T	W	T	F	S
	1	2	3	4	5	6
7	8	9	10	11	12	13
14	15	16	17	18	19	20
21	22	23	24	25	26	27
28	29	30	31			

August

S	M	T	W	T	F	S
				1	2	3
4	5	6	7	8	9	10
11	12	13	14	15	16	17
18	19	20	21	22	23	24
25	26	27	28	29	30	31

September

S	M	T	W	T	F	S
1	2	3	4	5	6	7
8	9	10	11	12	13	14
15	16	17	18	19	20	21
22	23	24	25	26	27	28
29	30					

October

S	M	T	W	T	F	S
		1	2	3	4	5
6	7	8	9	10	11	12
13	14	15	16	17	18	19
20	21	22	23	24	25	26
27	28	29	30	31		

November

S	M	T	W	T	F	S
					1	2
3	4	5	6	7	8	9
10	11	12	13	14	15	16
17	18	19	20	21	22	23
24	25	26	27	28	29	30

December

S	M	T	W	T	F	S
1	2	3	4	5	6	7
8	9	10	11	12	13	14
15	16	17	18	19	20	21
22	23	24	25	26	27	28
29	30	31				

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी से मुद्रित। संपादक : अशोक मोती।